भक्तामर कथा कामकुम्भ

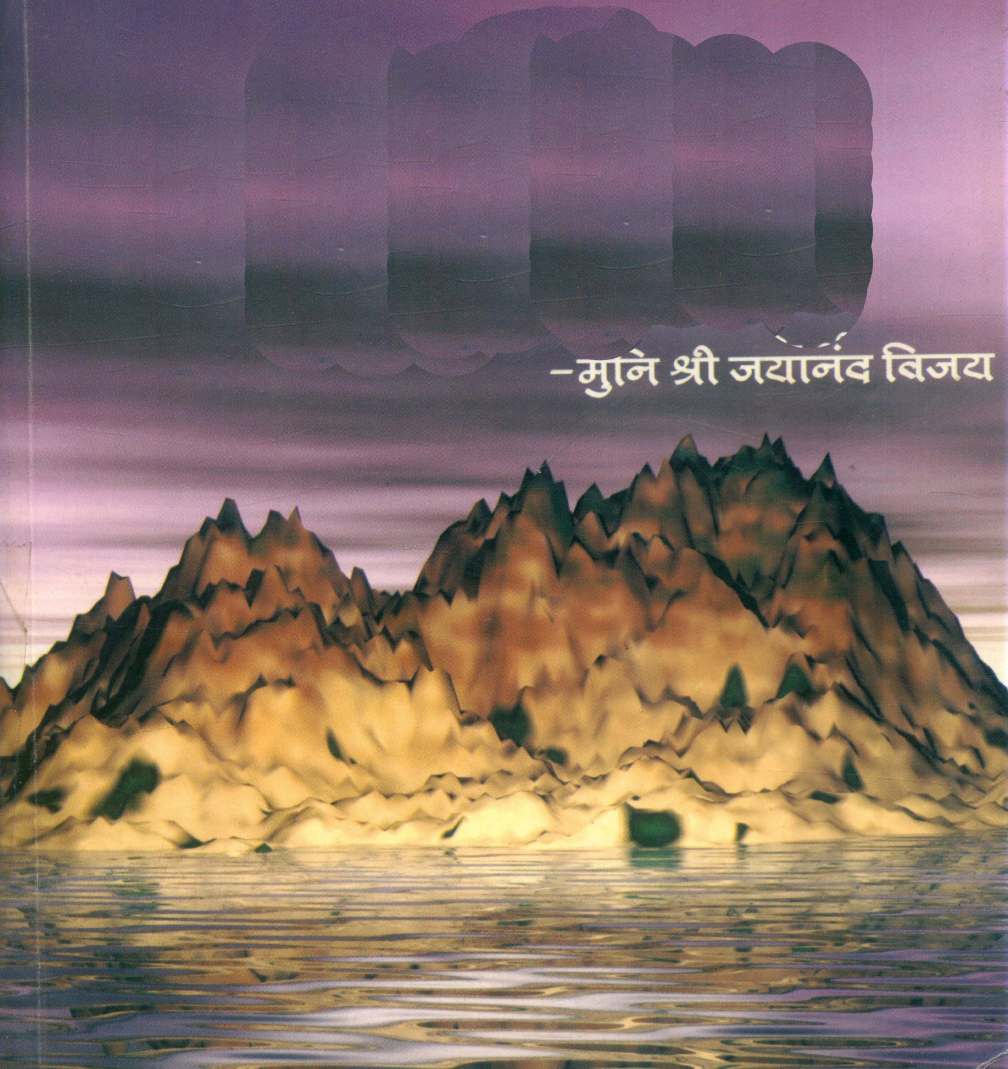

-मुनि श्री जयानंद विजय

॥ श्री आदिनाथाय नमः ॥
॥ प्रभु श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वराय नमः ॥

भक्तामर कथा कामकुम्भ

: दिव्याशीष :
श्री विद्याचन्द्रसूरीश्वरजी
मुनिराज श्री रामचंद्रविजयजी

KOBA
CHARITABLE TRUST

: लेखक :
मुनि श्री जयानंद विजय

पुस्तक का नाम : श्री भक्तामर कथा कामकुम्भ

लेखक : मुनिश्री जयानंदविजयजी

द्रव्य सहायक :

अ.सौ. मणिबेन बगदावमलजी के मासक्षमण नव्वाणु यात्रा अट्ठाई आदि तपाराधना निमित्ते

बगदावरमल, सुभाष, संजीव, शिखर, बेटा पोता इंदरमलजी चूनाजी हरण भीनमाल (नरतावाला)

फर्म : नायलोन इलेक्ट्रीक कंपनी
८९ वेस्टमासी स्ट्रीट
मदुराई - १

प्रत : १०००

प्रकाशक : श्री गुरू रामचंद्र प्रकाशन समिति, भीनमाल

संचालक :
(१) सुमेरमल केवलचंदजी नाहर, भीनमाल, राज.
(२) मीलियन ग्रुप, सूराणा, राज.
(३) श्रीमती सकुदेवी सांकलचंदजी नेतीजी हुकमाणी परिवार, पांथेडी, राज.
(४) शा हस्तीमल लखमीचंद भलाजी नागोत्रा सोलंकी परिवार, बाकरा, राज.

प्राप्ति स्थान :
(१) शा देवीचंदजी छगनलालजी, सदर बजार, भीनमाल, राज. ३४३ ०२६
(२) श्री आदिनाथ राजेन्द्र जैन पेढी, साँथू, राज. ३४३ ०२६
(३) शा नागालाल वजाजी खींवसरा, गोपीपूरा, काजी का मैदान, शांतिविला अेपार्टमेन्ट, सूरत, गुजरात
(४) महाविदेह भीनमाल धाम, शत्रुंजय पार्क के सामने, पालीताना (सौराष्ट्र)

तीर्थाधिराज श्री शत्रुञ्जयतीर्थाधिपति श्री ऋषभ स्वामिने नमः
कलिकाल सर्वज्ञ विश्वपूज्य प्रातःस्मरणीय अभिधान राजेन्द्र कोषनिर्माता
श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरीश्वर गुरूभ्यो नमः

श्री भक्तामर कथा कामकुम्भ

पूजाज्ञानवचोऽपाया - पगमातिशयाद्भुतम् ।
श्री नाभेयं नमस्कुर्वे सर्वकल्याणकारणम् ॥१॥

पूजातिशय, ज्ञानातिशय, वचनातिशय, और अपायापगमातिशय इन चार अतिशयों से युक्त जो अद्भुत है, सर्व कल्याणों के कारणरूप ऐसे श्री आदिनाथ प्रभु को मैं वन्दन करता हूँ।

महारजतसद्वर्णं, महानन्दविभूषणम् ।
महावीरं जिनं वन्दे, महामोहतमोऽपहम् ॥२॥

सुवर्ण समान सद्वर्णीय, मोक्ष के विभूषण रूप और महामोहरूपी अन्धकार को नष्ट करनेवाले महावीर प्रभु को मैं वन्दन करता हूँ।

श्रुतदेवीप्रसादेन भक्तामरवरस्तवे ।
वार्ताः काश्चिच्चमत्कारकारिणीः सार्थिका प्रथे ॥३॥

जिनवाणी रूपी श्रुतदेवी की कृपा से श्रेष्ठ स्तवन भक्तामर के विषय में चमत्कारी कितनी ही कथाओं का मैं (गुणाकार सूरि) विस्तार करता हूँ।

भक्तामर स्तोत्र की उत्पत्ति

पूर्व में इन्द्र की अलकापुरी को जितनेवाली, धन, धान्य से भरपूर, देव विमान समान महल की श्रेणिओं से सुशोभित, मनोहर उद्यान, चित्रशाला, सरोवर आदि क्रीडा-स्थलों से रमणीय उज्जयिनी नामक नगरी थी। वहाँ प्रतिभासंपन्न, न्याय-नीति में निपुण, शास्त्रों में पारङ्गत, एक छत्री शासनवाला भोज नामक राजा राज्य करता था। उनके सर्वशास्त्रों में प्रवीण, कवि, तार्किक शिरोमणि, मन्त्रज्ञ, यज्ञपटु ऐसे मयूर और बाण नामक दो पण्डित थे। वैसे इन दोनों का सांसारिक सम्बन्ध था। मयूर

ससुर और बाण उसका जमाई था। इतना निकटतम सम्बन्ध होने पर भी इन दोनों की एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या थी। आये दिन राजसभा में इनके बीच वाद-विवाद होता रहता था। दोनों अपनी-अपनी श्रेष्ठता साबित करना चाहते थे। राजा भोज एक सक्षम विद्वान होने पर भी, मयूर और बाण इन दोनों में श्रेष्ठ कौन यह निर्णय करने में अक्षम था। राजा असमंजस में था कि राजकवि के पद पर विभूषित किसे करूँ?

एक दिन राजसभा का रंग जबरदस्त जमा हुआ था। दोनों कविओं के बीच अनेक तर्क-वितर्क से चर्चा चल रही थी। दोनों आशुकवि थे। शीघ्र श्लोक रचना के द्वारा एक-दूसरे का उत्तर-प्रत्युत्तर दे रहे थे। सभासद उनके ज्ञाननिधि और आशुकवित्व को देखकर अवाक् रह गये। राजा भोज भी दुविधा में पड़ा कि किसे श्रेष्ठ कहूँ? भोज ने सोचा यदि मैं किसी एक को उत्तम कहूँगा तो दूसरा नाराज होकर यह देश छोड़कर चला जायगा। मैं इन दोनों में से किसी को भी खोना नहीं चाहता। इसलिए यह निर्णय इन पर ही छोड़ता हूँ। उसने दोनों को सम्बोधित करते हुए कहा - 'हे कविवर्यों! मैं आपकी मेधाशक्ति से अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ। मैं अति प्रसन्न हूँ कि मेरी राजसभा को विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवियुगल अपनी काव्यकला से अलङ्कृत कर रहे हैं। साथ ही साथ मुझे इस बात का खेद है कि आप दोनों के बीच हारजीत का फैसला देने के लिए न मैं समर्थ हूँ और न ही कोई सभासद। इसलिए आप दोनों काश्मीर देश में जाकर सरस्वती की उपासना कीजिए। सरस्वती प्रत्यक्ष होकर जो निर्णय देगी वही हमारे लिए माननीय होगा और राजकवि के पद पर उसका ही अभिषेक होगा।' भोज की बात सुनकर दोनों बोले - महाराज ने जो फरमाया वह यथार्थ है। अब इस बात का समाधान तो केवल माता भगवती सरस्वती ही कर सकती है। गर्वोन्नत होकर बोले इस समस्या की सुलझन शीघ्रातिशीघ्र हो जायगी। सरस्वती से प्रमाणपत्र प्राप्तकर ही पुनः इस राजसभा में पैर रखेंगे। थोड़े दिनों में ही पता चल जायगा कि कौन कितना पानी में है? दोनों स्व-स्व प्रशंसा करते हुए राज दरबार से निकलकर घर लौट आये। पाथेय आदि लेकर शुभ मुहूर्त में काश्मीर देश की ओर प्रस्थान किया। कहा भी है -

न सहन्ति इक्कमिक्कं, न विणा चिट्ठन्ति इक्कमिक्केण ।
रासहवसहतुरङ्गा जूआरा पण्डिया डिम्भा ।।

गधे, बैल, घोड़े, जुगारी, पण्डित और बालक यह परस्पर एक-दूसरे को सहन नहीं कर सकते और न ही एक-दूसरे के बिना रह सकते हैं। अर्थात् गधा-दूसरे

गधे के उत्कर्ष को न सह सकता है और न ही उसके बिना रह सकता है।

ससुर-जमाई का नाता होने पर भी मार्ग में एक-दूसरे के प्रति ऐसा आचरण कर रहे थे जिससे प्रतीत होता था कि मानो कट्टर दुश्मन हो। हमेशा दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश। मार्ग में चलते हुए पुस्तकों से लदी हुई पांच सौ बैलगाडियाँ उन्होंने देखी। एक बैलगाडीवाले को रोककर उन दोनों ने पूछा इन बैलगाडियों में क्या है? बैलगाडीवाले ने जवाब दिया हुजूर! इन पांचसौ बैलगाडियों में ॐकार वृत्तियाँ हैं। एक 'ॐ कार' शब्द पर विस्तारकर लिखी गयी ये पुस्तकें हैं। दोनों आश्चर्य से सिर धुनाने लगे। ज्ञान की अगाधता का विचार करते हुए आगे बढ़ रहे थे। अचानक उनकी नजर बैलगाडियों की लम्बी कतार पर पड़ी जो पुस्तकों के भार से भरी हुई थीं। फिर से उन्होंने एक बैलगाडीवाले को रोककर पूछा। इन पुस्तकों में क्या है? और आपके साथ कितनी बैलगाडियाँ हैं? उसने जवाब दिया हमारे साथ दो हजार बैलगाडियाँ हैं और इन सबमें ॐकार वृत्ति की पुस्तकें हैं। दोनों दांतों तले अँगुली दबाते रह गये। आश्चर्यान्वित परस्पर मुख ताकने लगे। दोनों ने सोचा ज्ञान की महिमा अपरंपार है। आज तक विरलें ही इसके पार को पा सके हैं। अल्प ज्ञान होते हुए भी हम व्यर्थ में घमण्ड कर रहे हैं। इस प्रकार विचार करते हुए गर्वरहित हुए और आगे बढ़े। थोड़ी देर चलने पर ॐकार वृत्तियों की बात भूल गये और एक-दूसरे को देखकर स्वाभिमान उत्पन्न हुआ। एक-दूसरे के प्रति पूर्ववत् व्यवहार करने लगे। चलते-चलते अन्धेरा छाने लगा। एक घनघोर वृक्ष देखकर रात वहीं विश्राम करने का निर्णय किया। दोनों भोजनकर सो गये। अर्ध रात्री के समय सरस्वती देवी के द्वारा समस्यापूर्ति रखी गयी। मयूर अर्धनिद्रावस्था में था। सरस्वती ने कहा, 'शतचन्द्रं नभस्तलम्'। पलक झपकते ही शेष पदों की पूर्ति करते हुए मयूर ने कहा -

दामोदरकराघात विह्वलीकृत चेतसा ।
दृष्टं चाणूरमल्लेन, 'शतचन्द्रं नभस्तलम्' ।।

कृष्ण के हाथ के प्रहार से विह्वल किया गया है चित्त जिसका ऐसे चाणूर मल्ल के द्वारा 'सेंकडों चन्द्रवाला आकाश' देखा गया।

यह श्लोक सुनते ही बाण भी जाग गया। अभिमान से हुंकार करते हुए उसने भी जवाब दिया -

यस्यामुत्तुङ्गसौधाग्रविलोलवदनाम्बुजैः ।
विरराज विभावर्यां 'शतचन्द्रं नभस्तलम्' ।।

ऊँचे महल के अग्रभाग पर ललनाओं के डोलायमान मुख रूपी कमलों के द्वारा जिस रात्री में 'आकाश तल शतचन्द्रों' से शोभायमान हो रहा था।

शीघ्र सरस्वती ने प्रत्यक्ष होकर कहा तुम दोनों महान कोटि के कवि हो। किन्तु बाण ने हुँकार करके समस्यापूर्ति की थी इसलिए यह मयूर से न्यून है। **ज्ञानयुक्त गर्विष्ठता दूषण है और ज्ञानयुक्त नम्रता भूषण।** मैंने ही उन बैलगाडियों के द्वारा ॐकार की पुस्तकें दिखाकर तुम दोनों के ज्ञानमद को दूर करने की कोशिश की थी। किन्तु अफसोस की बात है कि मैं इसमें निष्फल रही। मैं तुम दोनों के ज्ञान मद को दूर नहीं कर सकी। अभी भी समझ जाओ कि 'मैं ही पण्डित हूँ' इस प्रकार कोई भी व्यक्ति गर्व को वहन न करे। **तरतम योग होने से मति में भी तरतमता स्वाभाविक है। गर्वित के गर्व को दूर करनेवाला मिल जाता है। सर्वज्ञ के अलावा इस ज्ञान के पार कोई न पा सका है और न पा सकेगा।** इसलिए पारस्परिक ईर्ष्या का विलयकर प्रेम और दया के आलय बनों। इस प्रकार सरस्वती ने दोनों के मनोभेद मिटाकर एकता करायी। दोनों सरस्वती के आगे बाह्य से तो एक हो गये। किन्तु अभ्यन्तर में तो वही ईर्ष्याग्नि धधक रही थी। सरस्वती ने आशीर्वाद देकर वापस उज्जयिनी लौटने को कहा। पुनः अपने नगर में लौट आयें। पूर्ववत् इन दोनों के बीच वाद-विवाद चलने लगा।

एक बार बाण और उसकी पत्नी के बीच प्रणय कलह हो गया। पत्नी रुठी हुई थी और बाण मना रहा था। उसने हर प्रकार से पत्नी को समझाने की कोशिश की किन्तु वह कामिनी अपनें मान को नहीं छोड़ रही थी। रात्री बहुत व्यतीत हो चूकी थी। उसी समय मयूर का वहाँ से गुजराना हुआ। अपने जमाई और पुत्री की आवाज सुनकर उनके झरोखे के नीचे खड़ा होकर उन दोनों की बातें सुनने लगा। बाण कह रहा था, प्रिये! अब तो मान जाओ आज के बाद तुम्हें कभी गुस्सा नहीं दिलाऊँगा। मेरी इस एक भूल को तू माफ कर दे। इस प्रकार कहते हुए वह उसके चरणों में गिरा। उसकी पत्नी ने उसे पैर से ही धक्का दे दिया। नुपूर की आवाज से और नम्र बाण के अपमान से गवाक्ष के नीचे खड़ा मयूर बहुत दुःखी हुआ। सब प्रकार से जब बाण निष्फल रहा तब उसे रञ्जित करने के लिए काव्यमय भाषा में बोला-

गतप्राया रात्रिः कृशतनुशशी शीर्यत इव,
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णित इव।
प्रणामान्तो मानस्त्यजसि न यथा त्वं क्रुद्धमहो,

कुचप्रत्यासत्या हृदयमपि ते सुभ्रु! कठिनम्।।

रात्री बहुत बीत गयी, कृश शरीरवाला चन्द्र भी लगभग अस्त होने जा रहा है, घूम-घूमकर थके हुए के समान यह दीपक भी मानो निद्रा के वश हो गया है, प्रणाम से मान का अन्त आता है किन्तु अहो तू क्रोध को नहीं छोड़ रही है इससे मैं मानता हूँ कि हे सुन्दर भौंहोवाली! स्तन की समीपता से तेरा यह हृदय भी स्तन के समान कठिन हो गया है।

इस श्लोक को सुनकर नीचे खड़े हुए मयूर ने कहा, जमाईराज! सुभ्रु (सुन्दर भौंहोवाली) शब्द का प्रयोग बराबर नहीं है। इस वक्त यह क्रोध में है इसलिए चण्डी आदि जैसे कठोर शब्द का प्रयोग करो। दोनों ने ऊपर से नीचे की ओर झांककर देखा। बाण की पत्नी ने सोचा अरे! यह तो मेरे पिताजी नीचे खड़े-खड़े हमारा वार्तालाप सुन रहे हैं। दम्पती की गुह्य बातों को सुननेवाले ऐसे पिता को धिक्कार हो। पुत्री ने कहा, पिताजी! पुत्री के चरित्र को प्रकाश करनेवाले आपको मैं शाप देती हूँ कि आप के शरीर में कोढ़ रोग उत्पन्न हो जाये कहकर मुख में रहे हुए ताम्बूल का रस उस पर थूका। सतीत्व के प्रभाव से उसी क्षण उसके शरीर पर कोढ के धब्बे जगह-जगह उभर आये।

अगले दिन सुन्दर वस्त्रालङ्कार से सज-धजकर बाण पहले ही राजसभा में पहुँच गया। राजा और सभाजन बैठे हुए थे। बाण की नजर बार-बार दरवाजे की ओर जा रही थी। उसे मयूर के आने की प्रतीक्षा थी। थोड़ी देर बाद देखा ससुरजी आ रहे हैं। उसने सोचा हिसाब चुकता करने का यह सुनहरा अवसर हाथ लगा है। राजसभा में पैर रखते ही बाण ने उठकर कहा, 'कोढीजी का स्वागत है, पधारिए पधारिए'। राजा ने देखा वास्तव में यह तो कुष्ठ रोग से ग्रस्त है। मयूर से कहा, इस कोढ रोग का इलाज करवाकर, जब शरीर पहले समान नीरोगी हो जाय तब इस राजसभा में आना इससे पहले नहीं। मयूर ने टेढी दृष्टिकर बाण की ओर देखा और गर्जना करते हुए कहा राजन्! रोगरहित होकर कल ही मैं इस राजभवन में फिर उपस्थित होऊँगा। सब लोग मेरे प्रभाव को देखकर दंग रह जायेंगे यह कहकर राजसभा से निकलकर सीधा सूर्यदेव के मन्दिर में पहुँचा। वहाँ सूर्यदेव जब तक प्रसन्न न हो तब तक चारों आहारों का त्याग ऐसा दृढ निश्चयकर, पद्मासन लगाकर, स्थिर आसन होकर, एकाग्रतापूर्व सूर्य भगवन्त की स्तुति करने लगा। छट्ठे श्लोक के गाते हुए होने पर सूर्यदेव ने प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष होकर पूछा वत्स! बोल क्या इच्छा है? मुझे क्यों याद किया? सूर्यदेव! मैं कुष्ठरोग से पीड़ित हूँ। रोग से

मेरा शरीर भी जर्जरित हो गया है। आप मेरी देह को पूर्ववत् रोगरहित एवं सुंदर बनाने की कृपा कीजिए। देव 'तथास्तु' का आशीर्वचन उच्चारकर अन्तर्धान हुआ। पलक झपकते ही मयूर ने देखा कि उसका शरीर पूर्व से भी सुन्दर हो गया है। हर्षविभोर होकर पुनः एकसौ आठ स्तुतियों द्वारा सूर्यदेव की स्तुतिकर घर लौटा। दूसरे दिन ठीक समय पर राज दरबार में पहुँचा। राजा और सभासदों ने उसको कुष्ठरहित देखकर विस्मित हो गये। सब उसकी प्रशंसा करने लगे। राजा भोज ने भी उसकी प्रशंसा में फूल बिछा दिये। सब लोगों ने इसका कारण पूछा। मयूर ने सूर्यदेव की महिमा का वर्णन किया और उनकी कृपा से ही मैं पूर्व की स्थिति में पहुँचा हूँ इस प्रकार कहकर एक तीखी नजर बाण की ओर डाली। वह उसकी प्रशंसा से जल-भुन रहा था। मयूर की प्रशंसा उसके लिए असह्य हो रही थी। मयूर की तीखी नजर उसके घाव पर नमक छिड़क रही थी। आवेश के वश होकर उसने राजसभा में ही अपने हाथ-पैरों को काटकर प्रतिज्ञापूर्वक चण्डिका देवी की स्तुति प्रारम्भ की। मात्र श्लोक का छट्ठा अक्षर उच्चार करने पर ही देवी ने प्रत्यक्ष होकर उसके हाथ-पैर फिर से नवीन किये। राजसभा में जयजयारव गूँज उठा। राजा भोज ने बाण की भी पूजा-प्रशंसा की। सभाजनों के बीच राजा भोज ने कहा - इस जगत में शैव धर्म का प्रभाव अद्भुत है। शिवधर्म ही सर्वोत्कृष्ट है। यह इच्छुक की इच्छा को पूर्ण करनेवाला एवं शीघ्र फलदायी है। मैंने आज तक ऐसा अद्भुत प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं देखा था। मयूर और बाण ने दिखा दिया की शिव की आराधना कभी निष्फल नहीं होती। क्यों मन्त्रीवर आपने कभी ऐसा प्रभाव देखा या सुना है? चतुर, श्रावक मन्त्री ने खड़े होकर विनम्रतापूर्वक राजा से कहा - हुजूर गुस्ताखी माफ। छोटे मुंह बड़ी बात होगी। किन्तु सत्य बात कहना मेरा फर्ज है। हम उज्जयिनी की चार दिवारियों में कूपमण्डूक के समान रहकर अपनी-अपनी तारीफ के फूल बिछाते हैं। दुनिया बहुत बड़ी है। इस दुनिया के कोने-कोने में चमत्कार होते रहते हैं। हम सब उनसे अनजान हैं। ज्ञान-विज्ञान असीम है। थोड़ा चमत्कार देखकर उसे नमस्कार करना और उसे ही सर्वश्रेष्ठ मानना निहायत बेवकूफी है। इस जगत में शेर को सवाशेर मिल ही जाता है। इसलिए आप दूसरे धर्मों की परीक्षाकर फिर कोई ठोस निर्णय दीजिए। राजा भोज ने कहा - तो क्या मन्त्रीश्वर कोई ऐसा चमत्कारी और प्रभाविक पुरुष आपकी नजर में है? राजन्! मैंने सुना है शान्तिस्तवादि अनेक स्तोत्रों के कर्ता, शास्त्रशिरोमणि, दयानिधि, पट्टप्रभावक श्रीमान् मानतुङ्गसूरीश्वरजी अनेक नगर और गांवों को पावन करते हुए इस उज्जयिनी नगरी में पधारें है। वे

यन्त्र-तन्त्र-मन्त्र में निष्णात हैं। अनेक प्रकार की विद्याएँ उनके चरणों में आलोटती हैं। असंभवित को भी संभवित करने का सामर्थ्य आचार्य श्री में निहित है। वाद-विवादों में भी आज तक उनसे कोई न जीत सका है। अनेक देश के मूर्धन्य शिरोमणि विद्वानों को जमीन की धूल चटा दी है। उनमें न ही कोई त्रुटि ढूंढ सका है और न ही कोई कमी। सर्वगुण संपन्न, सर्वाङ्ग सुन्दर ऐसे श्री मानतुङ्गसूरीश्वरजी को भी बुलाकर एक बार परीक्षा होनी चाहिए जिससे दूध का दूध और पानी का पानी हो जाये। श्रेष्ठता का निर्णय तो पक्ष के सामने विपक्ष हो तो निष्पक्ष और निर्विवाद ठहरता है। केवल पक्ष के होने पर तो उसकी उत्तमता साबित होगी ही। क्योंकि **अपनी गली में कुत्ता भी शेर होता है।**

मन्त्री की बातें सुनकर राजा की उत्सुकता बढ़ गयी। उसे विश्वास था कि **यह मन्त्री कभी झूठ नहीं बोलता है।** इसने आचार्य श्री का जैसा वर्णन किया है वैसे ही वे सर्वगुण संपन्न होंगे। वैसे भी जैन साधुओं की क्रियाएँ, दयाभाव, निर्दोषता, ब्रह्मचर्य, निस्स्पृहता, ग्रामानुग्राम विहार आदि अनेक कठिन आचरणों के कारण उनमें ये गुण प्रकट होना स्वाभाविक है। आज तक केवल उनके बारे में सुना था किन्तु आज उन्हें साक्षात् निहालने का सुअवसर हाथ लगा है। स्वर्ण की भी कष-छेद-ताडन-ताप से परीक्षा होती है। जैन साधुओं की भी अच्छी प्रकार से परीक्षा करूँ कि वे इस पर खरे उतरते या नहीं। राजा ने शीघ्र ही आचार्य श्री को बुलावा भेजा। आचार्य श्री भी राजादेश को सम्मान देकर राजसभा में उपस्थित हुए। आचार्य श्री के शरीर की सुन्दरता, सुदृढ़ता, सुड़ौलता आदि देखकर राजा एकटक देखता रह गया। प्रवेश करते ही मेघ समान गम्भीर घोष आशीर्वचन के रूप में उच्चार किया -

जटाशाली गणेशार्च्यः, शङ्करः शाङ्कराङ्कितः ।
युगादीशः श्रियं कुर्याद्, विलसत्सर्वमङ्गलः ।।

पंचम मुष्टि केश जिनके लहलहा रहे हैं ऐसे जटाशाली, गणधरों से पूजित शान्ति को करनेवाले, बैल के लाञ्छनवाले, देदीप्यमान सर्व मङ्गल के निधान ऐसे युग की आदि में हुए आदिनाथ लक्ष्मी को करे।

सिंह के समान गम्भीर वाणी एवं मधुर, सुन्दर श्लोक को सुनकर भोज राजा प्रभावित हुआ। उसने सोचा **"यथा नाम तथा गुण"**। आचार्यश्री को बैठने के लिए आसन प्रदान किया। सबकी निगाहें आचार्यश्री की ओर थीं। अंगूठी में नगीने के समान मानतुङ्ग सूरि उस सभा में शोभायमान हो रहे थे। आचार्य श्री ने पूछा-राजन्!

हमें क्यों याद किया गया? राजा ने कहा 'हमने सुना है आप सभी कलाओं में पारङ्गत हैं। आप कोई काव्य कला या मन्त्रकला को जानते हैं? राजन्! विद्याएँ किसी को रञ्जित करने के लिए नहीं हैं। न ही प्रदर्शन की कोई चीज है। आत्मलक्षी साधु ऐसे जनरञ्जन से कोसों दूर रहते हैं। ये मन्त्र-तन्त्रादि कोई बच्चों के खेलने के खिलौनें नहीं है। हमारा तो सब कलाओं में श्रेष्ठ, सुख का कारण ऐसी धर्मकला में ही लक्ष रहता है। उसके ही प्रचार और प्रसार में व्यस्त रहते हैं। दूसरी अनर्थकारी कलाओं से हमारा कोई वास्ता नहीं है। मन्त्र-तन्त्रादि जैन धर्म के आचार विरुद्ध है। इसलिए दूसरा कोई कार्य हो तो अवश्य याद कीजिएगा जो हमारे आचार से अविरुद्ध हो। राजा ने कहा - तो मुझे मानना पड़ेगा कि शैवधर्म ही सर्वश्रेष्ठ है। इसका प्रभाव मैंने प्रत्यक्ष देखा है। अगर आपके पास कोई ऐसी शक्ति होती तो आप जरूर दिखाते किन्तु आप कोई चमत्कार दिखाने से कतराते हैं इससे यह सिद्ध होता है कि आपके पास कोई विद्या नहीं है। दुनिया तो चमत्कार को नमस्कार करती है। हमारी कसौटी पर केवल एक ही धर्म उत्तीर्ण हुआ है और उसीका हम स्वीकार करते हैं। मन्त्रीश्वर के कथन अनुसार आप और आपका धर्म कसौटी पर खरा नहीं उतर सका। आचार्य मानतुङ्ग सूरि विचाराधीन हुए। उन्होंने सोचा भावी लाभ के लिए, मिथ्यात्व को रोकने के लिए, जैनधर्म की प्रभावना के लिए और राजा के प्रतिबोध के लिए यहाँ मुझे मेरी शक्ति का सदुपयोग करना पड़ेगा। क्षणभर में ही निर्णय लेकर तुरन्त कहा ठीक है राजन् मैं कैसी भी कसौटी पर कसने के लिए तैयार हूँ। आप कहें तो जल पर चलकर दिखाऊँ या अग्नि में प्रवेशकर जिन्दा निकल आऊँ या आकाश में उड़कर बताऊँ। जैसा भी इम्तिहान हो मैं उसके लिए सज्ज हूँ। राजा ने सोचा ये सब विद्याएँ इन्होंने साध रखी हैं इसलिए इनकी परीक्षा देने की बात कर रहे हैं। इन सबसे विलक्षण कोई ऐसी कठोर परीक्षा लूँ जो इनके लिए दुस्साध्य हो। ऐसा विचारकर भोज ने कहा आपको लौहे की बेड़ियों से जकड़कर अन्धेरी कोठरी में डाला जायगा। उन बेड़ियों को तोड़कर अपने आप उस कोठरी से आपको बाहर निकलना है। आचार्य श्री ने कहा ठीक है राजन्। यदि मैं वहाँ से निर्विघ्न निकल पाया तो यह मेरा प्रभाव नहीं किन्तु युगादीश ऋषभदेव का प्रभाव जानना। क्योंकि मैं स्तोत्रों द्वारा उनका ही गुणकीर्तन करूँगा। मजबूत लोहें की चुम्मालीस बेड़ियों से जकड़कर बांधा और उन पर तालें लगा दिये गये। लौहमय दरवाजे वाली अन्धेरी कोठरी में डालकर उस पर भी ताला लगा दिया। बाहर निगरानी के लिए दो पहरेदारों को रखकर सख्त हिदायत दी गयी कि

बराबर पहरा दें। पंखी भी यहाँ फड़कने न पाये इसका खयाल रखना। सूचना देकर राजा और दूसरे सभाजन वापस सभा में लौट गये। दोनों रक्षक बाहर घूमते हुए कडी निगरानी रख रहे हैं। उतने में इनके कानों में मधुर ध्वनि ने प्रवेश किया। अचानक उन दोनों ने इधर-उधर देखा कि आवाज कहाँ से आ रही है। पल-दो-पल बाद आश्वस्त हुए कि यह तो अन्दर से ही आ रही है। मानतुङ्ग सूरि जैसे-जैसे श्लोक पढ़ रहे थे वैसे-वैसे एक-एक बेड़ी टूटने लगी। तैंतालीस श्लोक पूर्ण हुए और तैंतालीस बेड़ियाँ टूट गयी। जैसे ही चुम्मालीसवें श्लोक का पठन आरम्भ किया वैसे ही वह अन्तिम बेड़ी और ताला स्वयं टूट गया। दरवाजे पर रहा हुआ ताला भी स्वयं टूट गया। द्वार अपने-आप खुल गये। दोनों पहरेदार के साथ स्वयं आचार्य श्री मानतुङ्ग सूरि अपने आप भोज राजा की सभा में खड़े पाये गये। सब की नजर उनकी ओर गयी। कितनों को विश्वास भी नहीं हो रहा था कि उस अन्धेरी कोठरी से निकलकर आचार्य श्री राजसभा में आ गये हैं। कुछ सभाजन अपनी आँखें मसल रहे थे कि कहीं वो सपना तो नहीं देख रहे हैं। राजा भोज ने उठकर आचार्य श्री को प्रणामकर उन्हें सिंहासन पर आसीन किया। आचार्य श्री ने योग्य समय जानकर सुन्दर देशना दी। बहुत से लोगों ने जैन धर्म अङ्गीकार किया। स्वयं राजा भोज ने जैन धर्म स्वीकार किया। जैन धर्म की महती प्रभावना आचार्य श्री ने की। बहुत से लोगों ने 'भक्तामर स्तव' पाठ की महिमा देखकर प्रतिदिन उसका पठन-पाठन चालू किया।

प्रथम द्वितीय श्लोक : भक्तामर प्रणत...

भावार्थ : भक्त ऐसे देवों के नमे हुए मुकुटों की मणियों की प्रभा के उद्योतकर, पाप रूपी अन्धकार समूह के नाशक, भव सागर में डुबते हुए प्राणिओं के आलम्बन रूप, युग की आदि में हुए ऐसे जिनेश्वर के चरण युगल को अच्छी प्रकार से नमस्कारकर, सर्व शास्त्रों के रहस्य का बोध होने से उत्पन्न हुई बुद्धि की पटुतावाले इन्द्रों द्वरा तीनों जगत के चित्त को आकर्षित करनेवाले उदार स्तोत्रों के द्वारा जो जिनेश्वर स्तुति किये गये हैं उन प्रथम जिनेन्द्र (श्री ऋषभदेव) की मैं भी जरूर स्तुति करुँगा।

युगादि में आलम्बन रूप

श्री ऋषभ स्वामी हजार वर्ष पर्यन्त छद्मस्थ अवस्था में विहारकर विनीता नगरी के शाखापुर में पुरिमताल नामक शकटमुख उद्यान में न्यग्रोध वृक्ष के नीचे पधारे। वहाँ उन्होंने तीनों जगत के चराचर, रूपी-अरूपी पदार्थ को प्रकाश करनेवाला

केवलज्ञान प्राप्त किया। यमक ने आकर भरत को प्रभु के केवलज्ञान की बधाई दी। तभी शस्त्रशाला में चक्ररत्न उत्पन्न होने की बधाई शमक के द्वारा दी गयी। भरत विचार में पड़ा पहला महोत्सव किसका करूँ केवलज्ञान का या चक्ररत्न का। थोड़ी देर विचारकर निर्णय किया कि केवलज्ञान लोकोत्तर है और चक्ररत्न लौकिक इसलिए सर्वप्रथम केवलज्ञान का महोत्सव करूँ। इस प्रकार निर्णयकर अपनी दादी माँ मरुदेवी माता को गज पर आरूढकर भगवान को वन्दनार्थ चले। मरुदेवी माता ने देवदुन्दुभि और जयजयारव सुनकर भरत से पूछा-वत्स! यह कोलाहल कैसा? भरत ने जवाब दिया दादीजी! आपके पुत्र के पुण्य प्रभाव से आकृष्ट होकर देवता भी स्वर्ग से धरती पर उतर आये हैं। उन्हीं के द्वारा देवदुन्दुभि और जयनाद से किया जाता हुआ यह कोलाहल है। यह बात सुनकर मरुदेवी की आँखों से अत्यन्त हर्ष के आँसु छलक आयें। बरसों के नयनपडल दूर हुए। समवसरण देखा। रत्नमयादि तीन गढ में अशोकवृक्ष, इन्द्रध्वजा आदि विभूति से विराजित अपने पुत्र को देखकर विचारा-धिक्कार हो मेरे मोह को। मैं इतने दिनों से चिन्ता कर रही थी कि मेरा पुत्र शीत, ताप, वर्षा को सहन करता हुआ, जूते बिना पैदल जंगल, पर्वत, गुफा आदिओं में घूमता हुआ, निर्वस्त्र, आहार रहित, बहुत दुःखी होता होगा। इसके लिए बार-बार भरत को उपालम्भ भी देती थी कि तू अपने पिता की खबर नहीं लेता, किन्तु यह क्या? इसने तो इस प्रकार की ऋद्धि प्राप्त की और मुझे याद तक नहीं किया। अपने स्वास्थ्य का सन्देश भी नहीं भेजा। माता दुःखी है अथवा सुखी इसकी भी परवाह नहीं की। इस प्रकार विचार करते हुए एकत्व भावना का आलम्बन लेकर, क्षपकश्रेणी पर आरूढ होकर, केवलज्ञान प्राप्तकर, अन्तकृत् केवली होकर तत्काल ही सिद्धि गति को प्राप्त किया। देवों ने महोत्सवकर शरीर को क्षीर समुद्र में बहाया। भरत दादी माँ के वियोग से दुःखी और भगवान के संयोग से सुखी होता हुआ समवसरण में गया। प्रभु को वन्दनादिकर देशना श्रवण के लिए बैठा। भगवान ने मालकोश राग में संसार समुद्र से तिरानेवाली मधुरी देशना दी। भगवान की देशना के बाद ऋषभसेनादि दीक्षा ग्रहणकर साधु हुए, ब्राह्मी आदि साध्वियाँ, भरत प्रमुख उपासक, सुन्दरी, सुभद्रादि श्राविकाएँ और कितने ही मनुष्य, तिर्यंच, देवता, देशविरतिधर एवं सम्यक्त्वधर हुए। वहीं से तीर्थ का प्रारंभ हुआ। अठारह कोटा-कोटि सागरोपम के बाद इस भरत क्षेत्र में पुनः सिद्धि पथ प्रभु के द्वारा खोला गया। इसलिए युग की आदि में हुए आदिनाथ भगवन्त आलम्बन रूप हैं।

प्रथम-द्वितीय श्लोक पर प्राभाविक कथा :

राज सभा जमी हुई है। आचार्य श्री मानतुङ्ग सूरि के उज्जयिनी से विहार करने के पश्चात् कितने ही महीनें बीत चूके हैं। राजा भोज के दरबार में एक बार फिर मिथ्यात्व रूपी जुगनू टिमटिमाने लगे। आचार्य श्री रूपी सूर्य के आगे सर्व मिथ्यात्वियों का तेज विलीन हो गया था। किन्तु उन्होंने जैसे ही जाना कि आचार्य श्री विहारकर सुदूर दूसरे देश में चले गये हैं तब सोचा कि राजा पर पूर्ववत् अपना प्रभाव स्थापित हो। राजाजी फिर से शैवधर्म स्वीकार करें। महामन्त्री ने ही आचार्य श्री मानतुङ्ग को बुलाया था जिससे मन्त्र-तन्त्र-शास्त्रादि की चर्चा में हम उनसे परास्त हुए और पूरी उज्जयिनी में अपमानित हुए। अब इस मन्त्री से बदला लेने का अच्छा मौका हाथ लगा है। एक मिथ्यात्वी ने कहा राजन्! मुझे नहीं लगता कि आचार्य श्री के द्वारा पठित स्तोत्र से जंजीरें तुटी हों। स्तोत्र का इतना बड़ा चमत्कार नहीं हो सकता। उन्होंने किसी मन्त्र शक्ति या औषधि प्रयोग या किसी देवता के सान्निध्य से यह कार्य साधा है। दूसरे ने कहा - मुझे भी इस बात की शङ्का थी कि स्तोत्र के द्वारा इतना कठिन कार्य असाध्य है। जैनों के घर-घर में इसका स्मरण चालू है किन्तु अभी तक कोई चमत्कार हुआ हो ऐसा सुनने में नहीं आया। एक कोने से तीसरा बोला - मन्त्र, मणि, जड़ीबुट्टियाँ, देवता सान्निध्य या औषधियाँ ही कोई प्रभाव बता सकते हैं। दूसरा तो सब कुछ ढोंग है। इनकी ओट में स्वधर्मप्रशंसा कराने की चाल है। कार्य साधे औषधि आदि, नाम ले अपना। पीछे से आवाज आयी - अगर वास्तव में ही इस स्तोत्र का कोई चमत्कार है तो इसका श्रद्धालु कोई दुस्साध्य कार्य साधकर बताये तो हम विश्वास करें अन्यथा सिंह की खाल में भेड़िया ही समझा जायगा। इन बातों से राजा का सिर चकराने लगा। जैन धर्म पर उत्पन्न हुई श्रद्धा डाँवाडोल होने लगी। उसने सदस्यों से पूछा - क्या इस नगर में श्रद्धापूर्वक भक्तामर स्तोत्र का स्मरण करने वाला कोई व्यक्ति है? एक व्यक्ति ने कहा राजन्! मेरे पड़ोस में रहनेवाला हेम श्रेष्ठी नित्य भक्तिपूर्वक इसका पठन करता है। भोज ने आदेश दिया जाओ और शीघ्र ही उस हेम श्रेष्ठी को राज दरबार में ले आओ। अब मिथ्यात्वी कोरी कल्पना के लड्डु खाने लगे। इस सामान्य मनुष्य की क्या सामर्थ्य है कि वो कोई चमत्कार दिखाये। बिचारे के गले व्यर्थ में मुसीबत पड़ गयी। चमत्कार की शक्ति अगर हर किसी के बश की बात होती तो यह धरती ही स्वर्ग समान हो जाती। चलो देखें आगे आगे क्या नाटक होता है। आने दो उस हेम श्रेष्ठी के बच्चे को। सैनिक हेम श्रेष्ठी को लेने गये। राजाज्ञा सुनते ही श्रेष्ठी

राजसभा में उपस्थित हुआ। श्रेष्ठी का मध्यम कद, गौर वर्ण, रेशमी वस्त्र, भाल पर बादाम समान पीला तिलक, तेजस्वी आँखें सबको आकर्षित कर रही थीं। प्रणामकर पूछा - इस सेवक के लायक कोई कार्य फरमाइये। राजा ने पूछा - भक्तामर स्तोत्र प्रतिदिन स्मरण करते हो? श्रेष्ठी ने कहा - जी जहाँपनाह! परमतारक आदिदेव के स्मरण बिना अन्न-पान भी ग्रहण नहीं करता हूँ। नित्य प्रातः नियत समय पर अवश्य इसका पठन करता हूँ। क्या तुझे विश्वास है कि इस स्तोत्र के द्वारा किसी भी दुस्साध्य कार्य को साधा जा सकता है? श्रेष्ठी ने कहा - इसमें शङ्का का कोई स्थान ही नहीं। राजा ने कहा - तो तुम्हें नागपाश के द्वारा बान्धकर अन्धे कुएँ में उतारा जायगा। तीन दिन के अन्दर इस स्तोत्र के प्रभाव से बन्धन तोड़कर अपने आप उस कुएँ से बाहर निकलना है। यह राजादेश है। हेम श्रेष्ठी को नागपाश द्वारा मजबूत बान्धकर अन्धेरे कुएँ में उतारा गया। कुएँ के आजूबाजू सशस्त्र सैनिक तैनात किये गये। सब सैनिकों को कड़ा निर्देश देकर राजा और सब लोग वहाँ से लौट गये।

श्रद्धाहीन जाते-जाते विचारने लगे बिचारा व्यर्थ में मारा गया। तीन दिन भूखा-प्यासा अन्धेरे कुएँ में ही कहीं चिन्ता से दम तोड़ देगा। किन्तु कुएँ के अन्दर हेम श्रेष्ठी तो पूर्व के समान स्वस्थ चित्त से श्रद्धापूर्वक भक्तामर स्तोत्र के केवल प्रथम-द्वितीय श्लोक का ही लगातार स्मरण करने लगा। विश्वास के बल-बूते पर उसका मन भगवान के स्मरण में लीन हो गया। रात्री के प्रथम प्रहर में कुएँ में उद्योत हुआ। श्रेष्ठी तो इससे अनभिज्ञ ही प्रथम दो श्लोक के स्मरण में तल्लीन था। चक्रेश्वरी प्रत्यक्ष हुई। उसने श्रेष्ठी से कहा - श्रेष्ठी आँखें खोलो। मैं तुम्हारी भक्ति के प्रभाव से आकृष्ट होकर मदद के लिए आयी हूँ। श्रेष्ठी ने आवाज सुनकर आँखें खोली। देवी ने कहा कल सुबह मैं स्वयं आपको राजमहल में ले जाऊँगी कहकर सारी सुख सुविधा और उद्योत करके देवी तिरोभूत हुई। श्रेष्ठी ने फिर से आद्यद्वय श्लोक का पुनरावर्तन भक्तिभाव से शुरु कर दिया। प्रातः सूर्योदय के समय अचानक राजमहल में एक जोर से आवाज गूंजी बचाओ-बचाओ मुझे कोई यहाँ से छुडाओ। सबने देखा आवाज राजा के शयनखण्ड से आ रही है। सब भागकर राजा के शयनखण्ड में गये। सबने देखा राजा उठने की कोशिश कर रहा है किन्तु उठ नहीं पा रहा है। राजा चिल्लाने लगा मुझे इस बन्धन से कोई छुडाओ। सबने बन्धन छुडाने का प्रयत्न किया किन्तु निष्फल रहे। राणियाँ विलाप करने लगीं। मुख्य सभाजन और मन्त्रज्ञ, वैद्यादि सभी राजमहल में दौड़ें आये किन्तु सब बेकार। इतने

में अदृश्य चक्रेश्वरी देवी ने कहा - हेम श्रेष्ठी के द्वारा पठित स्तव से मन्त्रित पानी को राजा पर छाँटने से राजा बन्धन रहित हो जायगा। राजा ने आदेश दिया सम्मानपूर्वक शीघ्र ही हेम श्रेष्ठी को यहाँ ले आओ। इतने में तो राजा ने देखा श्रेष्ठी स्वयं वहाँ हाजिर है। एक बार तो उसे विश्वास नहीं हुआ कि अन्धेरे कुएँ से बन्धन तोड़कर यहाँ कैसे आ सकता है किन्तु अगले ही क्षण भक्तामर स्तव की महिमा जानकर निश्शङ्क हुआ। श्रेष्ठी ने भक्तामर स्तोत्र के प्रथम दो श्लोक द्वारा पानी अभिमन्त्रितकर जैसे ही राजा पर छाँटा वैसे ही वह अपने पलंग से उठकर श्रेष्ठी को भेंट पड़ा। फिर से एक बार नभस्तल से आवाज आयी। चक्रेश्वरी देवी ने राजा की तर्जना करते हुए कहा - हे मूढ़ राजन्! सकल सुरा-सुरेन्द्र एवं नरेन्द्रों से पूजित आदिनाथ स्तोत्र की महिमा तूने देख ली? आज के बाद फिर से कभी ऐसी भूल मत करना, वरना मुझसे बुरा कोई नहीं होगा। राजा ने देवी एवं हेम श्रेष्ठी से क्षमापना मांगी। क्षमाकर देवी विलीन हुई। भोज राजा ने श्रेष्ठी को अपने पास बिठाकर पूरी हकीकत पूछी। श्रेष्ठी ने प्रथम दो श्लोक के प्रभाव का वर्णन किया। राजा ने सोचा अहो! जिस स्तोत्र के दो श्लोक का प्रभाव भी इतना अद्‌भुत है तो सारे स्तव का अत्यन्त प्रभाव होगा इसमें कोई शङ्का का स्थान ही नहीं है। विरोधियों ने भी हेम श्रेष्ठी से क्षमायाचना मांगी। राजा ने हेम श्रेष्ठी को वस्त्रालङ्कार की मनुहार पूर्वक भेंट देकर सम्मानपूर्वक घर पहुँचाया। भोज राजा जैनधर्म के विषय में पहले से भी ज्यादा दृढ़ हुआ। जैन धर्म एवं भक्तामर स्तोत्र की महान प्रभावना हुई। सब लोग स्तोत्र एवं उसके कर्ता की प्रशंसा करते हुए घर लौटे एवं दूसरों ने भी इसका कीर्तन शुरू किया।

प्रश्न : जिनमंदिर की ध्वजा की छाया मकान पर गिरे तो अहितकर है क्या?

नहीं! जिनमंदिर से गृहस्थ का मकान कितनी दूरी पर होना चाहिए इस विषय को लेकर कहा गया है कि द्वितीय-तृतीय प्रहर की छाया जहाँ तक गिरती हो उतनी भूमि छोड़कर गृहस्थ को मकान बनाना चाहिए। इसके अंदर बनाये तो जिनमंदिर की आशातना का दोष लगता है। प्रथम एवं चतुर्थ प्रहर की छाया का कोई दोष नहीं है। *(कल्याण ५३ अंक ४-५ सन् १९९६)*

तृतीय श्लोक : बुद्ध्या विना पि...

भावार्थ : जिनके पैर रखने के आसन की भी देवताओं ने पूजा की हुई है ऐसे हे जिनेन्द्र! लज्जारहित ऐसा मैं बुद्धि बिना भी स्तवन करने के लिए सज्ज मतिवाला हुआ हूँ। निश्चय से, पानी में रहे हुए चन्द्रमा के बिम्ब को एकदम ग्रहण करने के लिए बालक को छोड़कर अन्य कौन मनुष्य इच्छा करे?

चतुर्थ श्लोक : वक्तुं गुणान्...

भावार्थ : हे गुणसमुद्र! चन्द्र समान उज्ज्वल आपके गुणों को बुद्धि से बृहस्पति जैसा भी कहने के लिए कौन समर्थ है? अथवा कल्पान्तकाल के वायु से उछलते मगरमच्छ के समूहवाले सागर को दो हाथों के द्वारा पार करने में कौन समर्थ है?

चतुर्थ श्लोक पर प्राभाविक कथा :

उज्जयिनी नगरी में सुमति नामक दरिद्री वैश्य रहता था। कर्म की विचित्रता के कारण दिन-ब-दिन इसकी स्थिति बिगड़ती गयी। जन्म लेते ही थोड़ें दिनों में माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। धन-माल-मिलकत ने भी उनके साथ विदाई ले ली। अब बचा था तो केवल अकेला निष्पुण्यक सुमति। दरिद्रता में स्वजन भी परजन हो जातें हैं। कोई भी इसकी मदद के लिए तैयार नहीं था। जैसे-तैसे महेनत-मजदूरी कर अपना गुजारा चलाता था। यों करते-करते कितने ही साल बित गये। उसकी हालत में कोई बदलाव नहीं आया। उसके मन में हर बार ये प्रश्न उठते कि मेरी ऐसी हालत क्यों? ऊँच जाति, मजबूत शरीर आदि मिले किन्तु साथ ही साथ दरिद्रता भी पीछा नहीं छोड़ रही है। इसका कारण उसे समझ में नहीं आता था। उसके अरमान थे कि वह भी अपने पिता के समान दान-पुण्य एवं धर्माराधना करे। किन्तु पिताजी की विदाई के साथ लक्ष्मी भी उनके साथ-साथ चल दी थी। केवल लोगों के मुंह से अपने माता-पिता की उदारता एवं अन्य गुणों की बातें सुनकर और एक लम्बा निःश्वास छोड़कर आकाश की ओर ताकता रहता। उसका जीवन रुक्ष आहार के समान नीरस था। न कोई आनंद और न कोई सुख। केवल कल की चिन्ता उसे सताती रहती। बड़ी मुश्किल से अपना गुजारा करता था। इस प्रकार कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन अचानक उसको मुनिराज के दर्शन हुए। अपना भाग्य पलटने का समय अब परिपक्व हो चूका था। चिन्तामणि एवं कल्पवृक्ष से भी मूल्यवान ऐसे साधु के दर्शन हुए थे। कहा भी है 'साधुनां दर्शनं पुण्यम्' मुनिराज को देखते ही सुमति के हृदय में आनन्द की उर्मियाँ हिलोरें लेने लगीं। प्रथम बार ही जीवन में आज साधु के दर्शन हुए थे। दिन महेनत-मजदूरी में

ही बितता था इसलिए देवदर्शन एवं गुरुदर्शन का मौका ही नहीं मिलता था। किन्तु आज अचानक नयनरम्य सौम्याकृति दिखायी दी। सुमति अपना दुःख, दारिद्र्य-भूख-तृषा आदि सब भूल गया। वन्दनकर मुनिवर के समीप में बैठा। अपना जीवन चरित्र मुनिवर के आगे प्रकाशित किया। मुनिवर से कहा - हे पूज्य! धर्म करने की अतीव तमन्ना रहती है किन्तु आजीविका की चिन्ता में पलभर का समय भी नहीं मिलता। आप ऐसा कोई उपाय बताइए जिससे मेरी खोयी हुई मिलकत मुझे वापस मिल जाय और मैं भी अपने पिता के समान धर्माराधना एवं दान करूँ। मुनिराज ने अनुभव से जाना कि इसने मुनि के दर्शन से बहुत कर्म प्रायः क्षय कर दिये हैं। यह जीव लघुकर्मी एवं उपदेश के योग्य है। इसलिए इसके आत्मकल्याण के लिए इसे कुछ उपदेश दूँ। उन्होंने कहा - सुमति! पूर्वभवों में आचरित कर्मों के द्वारा जीव इस भव में सुख या दुःख पाता है। शास्त्र में भी कहा है -

धणओ धणत्थियाणं, कामत्थीणं च सव्वकामकरो ।
सग्गापवग्गसङ्गमहेऊ, जिण देसिओ धम्मो ॥

धनार्थिओं को धन दायक एवं भोगार्थियों को भोग, स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति का कारण केवल जिनेश्वर द्वारा कथित धर्म ही है।

अधमजातिरनिष्टसमागमः प्रियवियोगभयानि दरिद्रता ।
अपयशोऽखिललोकपराभवो भवति पापतरोः फलमीदृशम् ॥

अधम जाति, अनिष्ट का संयोग, इष्ट का वियोग, भय, दरिद्रता, अपयश, अखिल लोक में पराभव ये सब पाप रूपी वृक्ष के फल हैं।

प्रायः यह जीव पूर्वकर्मोदय का अनुभव कर रहा है। तूने भी पूर्व भव में कोई सुकृत नहीं किया होगा जिससे दुःख रूपी खड्डे में पड़कर अनेक प्रकार के पराभवों को सह रहा है। सुखी होने का केवल एक ही उपाय है और वह है धर्माचरण। धर्म पूर्व सञ्चित अशुभ कर्मों का नाश एवं नवीन शुभ कर्मों का संपादन करवाता है। इसलिए दृढ़चित्त से धर्ममार्ग में एकाग्र बनो। इससे आज नहीं तो कल, अगर कर्म की बहुलता से इस भव में नहीं तो परभव में तो अवश्य सुख ही सुख मिलेगा। सुमति ने कहा - आप जो कह रहे हैं वह सत्य है किन्तु मुझे किसी भी प्रकार का कोई ज्ञान नहीं कि धर्मक्रियाएँ कैसी होती हैं और इसके लिए क्या-क्या करना पड़ता है और न ही मेरे पास व्यय करने के लिए द्रव्य। अतः महेरबानी कर कोई सरल और सुलभ मार्ग धर्माचरण का हो तो वह बताने की कृपा करीए। मुनिवर्य ने कहा चिन्ता मत करो सुमति। मैं तुम्हें प्रकट प्रभावी, कर्मनाशक, सम्पत्ति प्रदायक,

आदिदेव की स्तुति रूप गुत्था हुआ भक्तामर स्तोत्र सिखाता हूँ। तू निर्मल और निष्कपट भाव से स्व और पर कल्याण के लिए इसका नित्य स्मरण करना। इससे अवश्य ऐहलौकिक दारिद्र का नाश और पारलौकिक मोक्ष की प्राप्ति होगी। सुमति ने वन्दनकर विधि एवं बहुमानपूर्वक अत्यन्त हर्षोल्लास से मुनि द्वारा उच्चारित भक्तामर स्तोत्र ग्रहण किया। मुनि के आशीर्वाद से एवं शुभ भवितव्यता के द्योतन से सुमति को वह शीघ्र ही याद हो गया। मुनि को पुनः प्रणामकर, हृदय में हर्षातिरेक को धारण करता हुआ एवं मुनीश्वर की अनुमोदना करता हुआ अपने स्थान पर लौटा।

अब नित्य बहुमानपूर्वक सदा भक्तामर स्तोत्र का स्मरण करने लगा। इस प्रकार थोड़े दिन बिते। उसने सोचा मेरे पिताजी का इस नगर में जो आदर-सम्मान था उस स्थान को मैं भी प्राप्त करूँ, पुनः अपनी पूर्वगत वंश परंपरा को समुज्ज्वल करूँ। इसके लिए मुझे देशान्तर धनार्जन के लिए जाना पड़ेगा। इस नगर में रहकर मैं कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता। मुझे साहस करना पड़ेगा। शुभ समय पर अपनी नगरी से प्रस्थान किया। समुद्र तट पर आकर लोगों से पूछा यह जहाज कहां जा रहा है? उन्होंने जवाब दिया देश-देशान्तर घूमता हुआ रत्नद्वीप तक जायगा। उसने सोचा यह अच्छा मौका है। वह भी उन यात्रिकों के साथ हो लिया। जहाज कितने ही द्वीप लांघता हुआ आगे बढ़ रहा था कि अचानक एक मनहूस दिन आया जिसमें सब हताश हो गये। प्रलयकाल के समान महावायु चलने लगा। महादावानल के धूएँ समान मेघ की घनघोर श्रेणिओं से पूरे आकाश मण्डल में अन्धकार छा गया। उसके बीच अग्नि ज्वाला समान बिजलियाँ चमक रही थीं। यात्रिकों को दुस्सह्य ऐसी मेघ की गर्जना लोगों के हृदय को कँपा रही थी। मदिरा से उन्मत्त हुए के समान छोटी-बड़ी मछलियाँ, मगरमच्छ, जलबन्दर, जलघोड़े, अष्टापद आदि अनेक प्रकार के दुष्ट जलचर उर्मिओं में क्षोभित होकर जहाज से टकराने लगे। समुद्रतल पर रही हुई रजकण भी कर्ममुक्त के समान ऊँचे आ गये। उछलती हुई तरंगें जगत को खाने की इच्छावाली राक्षसी के समान प्रतीत हो रही थी। लुटेरों के द्वारा धाड़ पाड़ने से जिस प्रकार भाग-दौड़ मचती है उसी समान निर्यामक भयभीत होने से कोलाहल करते हुए इधर-उधर भाग रहे थे। जहाज पर उडता हुआ श्वेत कपड़ा भी मनोरथ के समान टुकडे-टुकडे हो गया। लङ्गर भी दुर्जन के समान कहीं पर भी स्थिति को प्राप्त नहीं हुआ। कृतघ्न के स्नेह के समान रस्सियाँ भी छिन्न भिन्न हो गयीं। मजबूत बाँस भी दुष्ट पुत्र के समान जहाज की

डोलायमान स्थिति को रोकने के लिए असमर्थ रहे। उसी समय कितने ही मुनियों के कर्मग्रन्थि के समान जहाज का मुख्य आधार स्तम्भ जडमूल से उखड गया। उस समय कितने ही यहाँ-वहाँ भाग रहे थे। चिन्ता के मारे कितने रो रहे थे, कितने ही इष्ट देव का स्मरण कर रहे थे और कितने ही भयभीत से कँपे हुए अपने परिवार को लेकर एक कोने में बैठे हुए थे। किन्तु सुमति निरन्तर भक्तामर स्तव के चौथे श्लोक का स्मरण कर रहा था। उसके हृदय में न कोई डर था और न ही कोई क्षोभ किन्तु एकाग्रता से चतुर्थ स्तोत्र में लयलीन था। स्तम्भ उखडते ही अचानक एक झटका-सा लगा और जहाज छिन्न-भिन्न हो गया। जहाज, वस्तुएँ और उसमें रहे हुए लोग पानी में डूबने लगे। सुमति के चतुर्थ गाथा के स्मरण के प्रभाव से चक्रेश्वरी देवी का आसन कम्पायमान हुआ। उसने आकर सुमति को समुद्र के पार तट पर पहुँचाया। उसकी भक्ति से तुष्ट होकर सुमति को पांच अमूल्य रत्न दिये। देवी ने कहा जो प्रभु ऋषभदेव की भक्ति करता है वह मेरे लिए भी आदरणीय है। उस चतुर्थ स्तुति के प्रभाव से मैं भी मदद के लिए दौड़ी आयी। आदिनाथ के गुण-गान गाने से तुम्हारे अशुभ कर्म नष्ट हो गये हैं। अब तुम्हारे आनन्द के दिन नजदीक हैं इसलिए वापस अपने नगर लौट जाओ। इन पांच रत्नों के प्रभाव से तुम्हारा ऐश्वर्य आजीवन अक्षुण्ण रहेगा कहकर देवी अदृश्य हुई। सुमति वापस अपनी उज्जयिनी में लौट आया। रत्नों के प्रभाव से नगर सेठ की पदवी प्राप्त की। अपने पिता से भी अधिक दान-पुण्य में धन का व्यय करने लगा। उत्तुङ्ग शिखरबद्ध प्रभु श्री ऋषभदेव के भव्य जिनालय का निर्माण करवाया। उसकी कीर्ति दिग्-दिगान्तर में फैलने लगी। द्वादश व्रतधारी परम श्रावक बना। अन्त में सद्गति को भजनेवाला हुआ।

प्रश्न : जिनमंदिर की पांच आशातना कौनसी?

(१) अवर्ण आशातना, (२) अनादर आशातना, (३) भोग आशातना, (४) दु:प्रणिधान आशातना, (५) अनुचित्त वृत्ति आशातना।

(बृहद् भाष्य [श्राद्धविधि भाषांतर] पृ. १०५)

प्रश्न : गुरुवंदन न करने से कौन से दोष लगते हैं?

(१) अभिमान, (२) अविनय, (३) शासन की अपभ्राजना, (४) नीच गोत्र का बंध, (५) बोधि दुर्लभता, (६) संसार वृद्धि।

पञ्चम श्लोक : सोऽहं तथापि...

भावार्थ : हे मुनीश! वह मैं (स्तुति करने के लिए अशक्त हूँ) तो भी भक्ति के वश से शक्ति रहित भी ऐसा मैं स्तुति करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूँ। क्योंकि अपनी संतान के रक्षार्थ स्नेह से अपने बल का विचार किये बिना क्या हिरण सिंह के सामने युद्ध के लिए नहीं जाता?

षष्ठम श्लोक : अल्पश्रुतं श्रुतवतां...

भावार्थ : विद्वानों के हास्य का स्थान अल्प श्रुतवाले ऐसे मुझको बलात्कार से आपकी भक्ति वाचाल करती है। निश्चय से वसंत ऋतु में कोयल जो मधुर स्वर से कूजती है, उसमें सुन्दर आम की कलियों का समूह ही एक कारणभूत है।

सप्तम श्लोक : त्वत्संस्तवेन भव...

भावार्थ : देहधारियों की भव परंपरा से गाढ़ बन्धे हुए पाप आपके स्तवन द्वारा क्षणभर में क्षय होते हैं। जिस प्रकार विश्वव्याप्त, भंवरों के समान श्याम, रात्रि सम्बन्धी संपूर्ण अन्धकार सूर्य के प्रकाश से भेदा हुआ शीघ्र क्षय होता है।

सप्तम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा :

पाटलीपुर नगर में धनाढ्य सुधन नामक परम श्रावक रहता था। वह भक्तिभाव से अपने द्वारा कराये गये श्री आदि जिन के मंदिर में त्रिसन्ध्य पूजा-पाठ करता था। उसके संसर्ग में आकर कितने ही नास्तिक भी आस्तिक हो गये थे। उसके समझाने की छटा और निष्कपट आचरण दूसरों के हृदय परिवर्तन में कारणभूत थे। इसके संपर्क में आकर पाटलीपुर नरेश भीम भी दृढ़ सम्यक्त्वधारी श्रावक बन गया था। रोज राजसभा में शाम को धर्मगोष्ठी होती और उसमें सुधन सबको तत्त्व की गूढ़ रहस्यमय बातें अत्यन्त सरलता से समझाता था। तर्क, उदाहरण और दृष्टान्त के द्वारा कैसा भी विषय सबके गले उतर जाता था। इससे राजा भीम और अन्य लोगों की श्रद्धा में दिन दुगुनी रात चौगुनी वृद्धि होती थी। राजा भीम सुदेव, सुगुरु और सुधर्म को ही नमन करता था। साधर्मिकों की सहायताकर उनके दुःख-दर्दों को दूर करता था। प्रतिदिन शाम को राजा भीम और सुधन की सत्संगति होती तब थोड़े मिथ्यात्वी इसे देखकर ईर्ष्या के मारे जलने लगते। राजा भीम जानता था कि वह हर समय मिथ्यात्वियों से घिरा हुआ है। उसे सुधन जैसे श्रावक की सत्संगति नितान्त आवश्यक है। नीतिशास्त्र में भी कहा है -

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं, मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दीक्षु, तनोति कीर्तिं, सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ।।

बुद्धि की जड़ता का हरण करती है, वचन में सत्यता का सिञ्चन करती है, मानोन्नति प्रदान करती है, पाप नष्ट करती है, चित्त प्रसन्न करती है. और दशों दिशाओं में कीर्ति फैलाती है। बोल सत्सङ्गति पुरुष का क्या नहीं करती?

इस प्रकार ज्ञान-विज्ञान की चर्चा में कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन पाटलीपुर के उद्यान में वैष्णव धूलीपा नामक योगी आया। उसने मलीन विद्याओं के द्वारा कितने ही क्षुद्र भूत-प्रेतादि सिद्ध कर रखे थे। चमत्कार दिखाकर पाखण्डियों का समूह इकट्ठा कर लिया था जो हर समय उसे घेरा रहता। अब पाटलीपुर में भी अपनी मलीन विद्याओं का प्रभाव दिखाने लगा। अनेक प्रकार के छोटे-मोटे चमत्कार देखकर लोग आकर्षित होने लगे। बात नगर के हर मुहल्ले तक फैल गयी। बच्चे से लेकर बूढ़े तक दिन होते ही उद्यान में दौड़े आते। साधित क्षुद्र भूत-प्रेत के द्वारा प्रतिदिन नये-नये चमत्कार दिखाता। कभी हाथ में रही हुई वस्तु मुट्ठि बन्ध करते ही गायब हो जाती और वह वस्तु किसी नगरजन के जेब से या धोती से निकल आती। मुर्गियों जैसी चीज को टोपले के नीचे रखकर गायब कर देता। भारी चीजें हवा में उड़ाकर बताता। ऐसे कितने ही चमत्कार दिन भर बताकर, रात को फिर उसी क्षुद्र देवों की आराधना में लग जाता। यह बात फैलते-फैलते राजा और सुधन के कानों तक भी पहुँची। लोगों ने उन्हें धूलीपा के दर्शन करने का अत्यन्त आग्रह किया। कहा कि महाराज! ऐसा प्रत्यक्ष चमत्कार आपने कभी नहीं देखा होगा। केवल आप एक बार उसके चमत्कार को देख तो लीजिए फिर भले ही आप दूसरी बार न जाये। राजा भीम और सुधन टस से मस नहीं हुएँ। अपनी बात पर अडीग रहे। अगले दिन धूलीपा चमत्कार बता रहा था। थोडी देर बाद कार्यक्रम पूर्ण हुआ। नगरजन वापिस अपने घर लौट गये। केवल ईने-गिने बड़े लोग जो उसके खास भक्त थे वे बैठे हुए थे। धूलीपा ने उनसे पूछा - क्या नगर के सब लोग मेरे चरणों में आ गये अथवा अभी कोई बाकी है? एक जैन धर्म के ईर्ष्यालु ने कहा वैसे तो सब नागरिक आपकी सेवा में उपस्थित हो गये हैं किन्तु नगर के दो लोग ऐसे अक्कड हैं कि वे किसीके आगे भी अपना सिर नहीं झुकाते हैं। धूलीपा ने पूछा कौन है वे दो? ईर्ष्यालु ने जवाब दिया राजा भीम और सुधन श्रेष्ठी। ये दोनों सबको अज्ञानी और पाखण्डी मानते हैं। आपके आये इतने दिन बित गये किन्तु एक बार भी आपके दर्शन के लिए नहीं आये। हमने उन्हें कई बार कहा कि आप एक बार तो योगीजी के दर्शन कर लीजिए किन्तु दर्शन की बात तो दूर रही और उल्टा जवाब दिया कि ऐसे ढोंगी पाखण्डियों की दुनियाँ में कोई कमी नहीं है। यह बात

सुनकर धूलीपा की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं। उसने कहा उस दो टके के राजा की यह हिम्मत कि मुझे पाखण्डी कहे। आज ही उसका अभिमान चकनाचूर करता हूँ और वह गिडगिडाता हुआ मेरे चरणों में आकर न गिरे तो मेरा नाम भी धूलीपा नहीं। जैन विद्वेषी तो इस बात को सुनकर अन्तर में फूले नहीं समा रहे थे। अब आयगी राजा की अक्ल ठिकाने। उस सुधन के बच्चे ने तो कई लोगों को जैन धर्मी बना दिया है। अब उसके पछताने के दिन आ गये हैं। जब गिडगिडाता हुआ योगीजी के चरणों में गिरेगा तब पूछेंगे कि कहाँ गयी तुम्हारी नीरस कपटी तत्त्व की बातें? अहो योगीजी के चमत्कार को ये दोनों बिचारे नहीं जानते कि वे क्या नहीं कर सकते हैं। जख्म पर नमक छिडकते हुए कहा योगीजी आप कैसी भी करामत दिखा दे किन्तु हमें नहीं लगता कि वे दोनों आयें। धूलीपा ने कहा इसकी खबर तो कल सुबह ही पडेगी जब वे दोनों मेरी सेवा में तत्पर हाजिर होंगे। सब लोग धूलीपा की प्रशंसा करते हुए बिखर गये।

मध्यरात्री का समय था। पुरा पाटलीपुर निद्रा देवी की गोद में सो रहा था। उस समय पाखण्डी धूलीपा तन्त्र-मन्त्र की आराधना में रत था। अनेक मन्त्रों द्वारा देवों का आह्वन कर रहा था। भीम राजा और सुधन सेठ को यादकर उसकी भ्रुकुटी तन जाती। जोर से धान्य होम के लिए अग्नि में फेंकता। मन्त्र जाप पूर्ण होते ही क्षुद्र पिशाच हाजिर हुआ। उसने पूछा क्या आज्ञा है? जाओ और जाकर भीमराज के महल में, सुधन श्रेष्ठी के घर में एवं आदिनाथ के मन्दिर में इतनी धूल की वृष्टि करो कि पूरे के पूरे भर जायें। दास को तो मालिक की कैसी भी आज्ञा माननी ही थी। सारी रात तीनों जगह धूल की वृष्टि कर पूर्णतया भर दिये। हमेशा की तरह सुधन श्रेष्ठी ब्रह्ममुहूर्त में उठा। उसने देखा चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार है। सारा मामला समझते देर न लगी। अगर मैं इस उपसर्ग को नहीं टालूंगा तो जैन धर्म का अवर्णवाद होगा। निश्चय से राजा भीम भी संकटग्रस्त होंगे। अब तो केवल आदिदेव की ही शरण है। इस प्रकार विचारकर भक्तामर स्तोत्र के सातवें श्लोक का स्मरण करने लगा। निरन्तर उत्साहित आशापूर्वक स्मरण करते हुए जब सूर्योदय में थोड़ी देर बाकी थी तब चक्रेश्वरी देवी प्रकट हुई। क्षणभर में संपूर्ण धूल उठाकर वैष्णव मन्दिर एवं धूलीपा के निवास स्थान पर वर्षा करने लगी। धूलीपा लेटा हुआ सोच रहा था कि अभी सूर्योदय होगा। राजा और सुधन को सङ्कट में देखकर लोग मेरे पास दौड़े आयेंगे। मैं उन्हें उस आफत से छुड़ाऊँगा तब वे दोनों भी मेरे भक्त बन जायेंगे। धूलीपा जैसे ही कल्पना के गगन में विहार कर रहा था वैसे ही गगन से धूल

की वृष्टि होने लगी। उसकी समझ में कुछ नहीं आया कि यह क्या हो रहा है? उसने वहाँ से भागना चाहा किन्तु तब तक तो पूरा घर धूल से भरा जा चूका था। अब अपने किये पर पछताने लगा। घड़ीभर में सूर्योदय हुआ। लोग भीमराजा एवं सुधन श्रेष्ठी के घर की ओर चले। वहाँ जाकर देखा तो वे दोनों पूर्ववत् स्वस्थ थे। जैन द्वेषी विस्मित हुए कि यहाँ तो कुछ भी नहीं हुआ। इतने में पूरे नगर में समाचार फैले कि धूलीपा का घर धूल से ढँक गया है। लोगों का सेलाब उसके घर की ओर उमठ पड़ा। सबने देखा कि इस धूल के ढेर के बीच से धूलीपा को निकालना अशक्य है। न अन्दर की आवाज बाहर आ रही थी और न बाहर की आवाज अंदर जा रही थी। धूलीपा अन्दर बैठे-बैठे पश्चात्ताप कर रहा था। देवी ने प्रत्यक्ष होकर अनेक उपालम्भ देकर तर्जना की। उसने कहा यदि सुधन श्रेष्ठी के चरणों में गिरकर क्षमा याचना करेगा तो मैं अपनी लीला समेटती हूँ। धूलीपा ने स्वीकार किया। क्षणभर में धूल गायब हो गयी। अब धूलीपा आंसु बहाता हुआ नंगे पैर सुधन के घर गया उसके चरणों में गिरकर क्षमा मांगी। सुधन उसे राज दरबार में ले आया। राजा को सारी हकीकत ज्ञात करवायी। सुधन ने धूलीपा को हिंसा, असत्य, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह आदि के बारे में एवं उसके कड़वें फलों के बारे में समझाया। अबुध लोगों को चमत्कार दिखाकर ठगने से कैसी-कैसी परिस्थितिओं का सामना करना पड़ेगा इसके बारे में भी सुन्दर भाषा में समझाया। कुदेव, कुगुरु और कुधर्म से दुर्गति एवं सुदेव, सुगुरु एवं सुधर्म से सद्गति होती है। शास्त्रों में भी कहा है -

देवेषु वीतरागाद्, देवो व्रतिषु व्रती च निर्ग्रन्थात् ।
धर्मश्च क्षान्तिकृपा - धर्मादस्त्युत्तमो नान्यः ।।

देवों में वीतराग होने से वीतराग देव, व्रतिओं में बाह्य-अभ्यंतर गांठ के रहित होने से साधु, क्षमा, कृपा आदि धर्म उत्तम है, अन्य नहीं।

धूलीपा भी सम्यक्त्वधर हुआ। सुधन को अपना गुरु माना। मिथ्यात्व मत का त्याग किया। सदाचरण में प्रवर्तित हुआ। राजा ने भी देखा कि इसका हृदय परिवर्तन हो चूका है तब बहुमानपूर्वक विसर्जित किया। शाम को फिर से गोष्ठी हुई। सुधन ने भक्तामर स्तव की महिमा का वर्णन किया। उसने कहा कि सातवें श्लोक के स्मरण से उसके ऊपर एवं राजा के ऊपर आया संकट कैसे टला। सबने बहुमानपूर्वक भक्तामर सिखने का निश्चय किया। इस प्रकार सुधन श्रेष्ठी ने जैनधर्म की महान प्रभावना की।

अष्टम श्लोक : मत्वेति नाथ...

भावार्थ : इस प्रकार मानकर हे नाथ! अल्प बुद्धिवाले मेरे द्वारा यह आपकी स्तवना शुरु की जा रही है। आपके प्रभाव से सज्जनों के चित्त को आकर्षित करेगी। क्योंकि पानी का बिन्दु कमल के पत्र पर मोती जैसी शोभा को प्राप्त करता है।

नवम श्लोक : आस्तां तव...

भावार्थ : समस्त दोषों को दूर करनेवाला आपका स्तवन तो दूर रहा, आपका नाम भी जगत के दुरितों को नष्ट करता है। सूर्य दूर रहो, (सूर्य की) प्रभा ही सरोवरों मे कमलों को विकसित करती है।

अष्टम-नवम श्लोक पर प्राभाविक कथा :

देवों को भी आकर्षण का केन्द्र ऐसा मनोहर वसन्तपुर नामक नगर। नित्य प्रति मानो वहाँ वसन्त ऋतु से व्याप्त कोयल की मधुर कूजन जन-मन को हर्षोल्लसित करती थी। रमणीय रमणियाँ, उदार दाता, स्वच्छ वातावरण, अनेक पर्यटन स्थलादि नगर की शोभा में चार चाँद लगा रहे थे। उसी नगर की निर्धन झोपड़पट्टी में साक्षात् दारिद्र की मूर्ति ऐसा केशव नामक निर्धन वणिक् रहता था। बड़ी मुश्कील से अपना गुजारा चलाता था। एक दिन उद्यान में बैठा हुआ था। उसके कानों में लोगों को प्रवचन देते हुए मुनिराज की अमृतमय वाणी ने प्रवेश किया -

धर्मो मङ्गलमुत्तमं नरसुरश्रीभुक्तिमुक्तिप्रदो,
धर्मः पाति पितेव वत्सलतया मातेव पुष्णाति च।
धर्मः सद्गुणसङ्ग्रहे गुरुरिव स्वामीव राज्यप्रदो,
धर्मः स्निह्यति बन्धुवद् दिशति वा कल्पद्रुवद् वाञ्छितम् ।।

धर्म उत्तम मङ्गल है, मनुष्य एवं देवलोक में लक्ष्मी आदि की भोग-उपभोग सामग्री देकर मुक्ति प्रदायक है, पिता के समान रक्षा करता है, माता के समान वत्सलता से पोषण करता है, सद्गुणों के संग्रह में गुरु समान है, स्वामी के समान राज्य लक्ष्मी देनेवाला है, बन्धु के समान स्नेह करता है एवं कल्पवृक्ष के समान वाञ्छित को देता है।

उनकी वाणी के जादू से खिंचा हुआ केशव भी मुनि के समीप में जाकर बैठ गया। जीवन में आज पहली बार किसी मुनि की देशना सुनी थी। उसे सब कुछ नया नया लग रहा था। नयी-नयी बातें, नये-नये लोग और प्रथम बार मुनिराज के दर्शन। फिर भी उसे सब सुहावना लग रहा था। अव्यक्त आनन्द अभ्यन्तर में स्फुरायमान हो

रहा था। जिन्दगी के सत्य पहेलू के बारे में जानने का यह प्रथम अवसर था। मुनिवर के मुख की सौम्याकृति ही उनके गुणों को प्रकट कर रही थी। केशव ने सोचा - इनका कथन यथार्थ है। मैंने भी पूर्व भवों में कोई धर्म नहीं किया होगा जिसका परिणाम आज भुगत रहा हूँ। दुनिया में भी स्पष्ट दिखायी देते हैं गरीब-अमीर, दास-मालिक, इन्द्रियपटु-इन्द्रियहीन, रोगी-नीरोगी इन सब के बीच रेखा खिंचनेवाला कौन? दुनिया में सब एक-से क्यों नहीं? इसका मतलब कोई ऐसा तत्त्व है जो उत्कृष्ट और निकृष्ट की भेद-रेखा खिंचता है और वह तत्त्व है मुनि द्वारा कथित धर्म। अब मैं भी जीवन उत्थान के उपाय का आचरण करूँ। देशना समाप्त हुई। लोग मुनिवर को वन्दनकर अपने-अपने घर लौट गये। केशव वहीं बैठा रहा। थोड़ी देर बाद मुनिवर के चरणों के समीप जाकर बैठा। अपनी निर्धनावस्था के बारे में मुनिवर को कहकर उससे पीछा छुड़ाने का उपाय पूछा। मुनि ने कहा जब अशुभ कर्मों का क्षय होता है तब ऋद्धि स्वयं दासी के समान दौड़ी आती है। पुण्यहीन लक्ष्मी का पीछा करता है किन्तु लक्ष्मी उससे कोसों दूर भागती है और पुण्यवान के सामने लक्ष्मी स्वयं चलकर आती है। इसलिए पुण्योपार्जन करो। गुरुवर्य! पुण्य उपाय का मार्ग आप बता सकते हैं? पांच अणुव्रत का पालन एवं जिनेश्वर की भक्ति से पूर्व सञ्चित अरिष्टों का नाश होता है और पुण्य का उपार्जन होता है जो देवेन्द्र और नरेन्द्र की लक्ष्मी देकर अन्त में शाश्वत सुख को देनेवाला होता है। मैं तुम्हें भक्तामर स्तोत्र देता हूँ। इसका तुम नित्य स्मरण करना जिससे मन आनन्दित और हृदय विशुद्ध होता चला जायगा। दीनता नष्ट होगी और वीरता प्रकट होगी।

मुनि के मुखकमल से मधुर स्वर में उच्चारित भक्तामर स्तोत्र को ग्रहण किया। लौटते समय केशव ने पूछा अभी आप इस उद्यान में कितने दिन ठहरेंगे? मुनि ने कहा एक महीना। इस बात कों सुनकर केशव का रोम-रोम रोमाञ्चित हुआ। अहो अब हर दिन प्रवचन श्रवण का लाभ मिलेगा। विधिपूर्वक प्रणामकर अपने घर लौटा। हर दिन मुनि के समीप जाकर धर्मश्रवण करता है। उसकी श्रद्धा एवं भावना दृढ़तम हो गयी। मासकल्प पूर्ण होते ही मुनि वसन्तपुर से विहार कर गये। केशव मुनिवर्य को मन से भावपूर्वक नमस्कारकर, हृदय में आदिनाथ का न्यासकर नियत समय पर, नित प्रति एकाग्रता पूर्वक भक्तामर स्तोत्र का स्मरण करता। एक दिन उसके मन में विचार आया कि धन बिना सब निरर्थक है। कहा भी है -

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः काञ्चमाश्रयन्ति ।।

जगत में जिसके पास धन है वही नर कुलीन कहा जाता है और वही पण्डित, शास्त्रवान, गुणज्ञ, वक्ता एवं दर्शनीय होता है। कारण कि सभी गुण सोने का आश्रय कर रहते हैं।

इस प्रकार विचारकर परदेश जाने का विचार किया। उसी दिन नगर में पटह बज रहा था कि सार्थवाह यहाँ से परदेश जा रहा है जिस किसी भी व्यक्ति को साथ में आना हो वह आ सकता है। सार्थवाह सब सुख-सुविधा उपलब्ध करायेगा। केशव ने सोचा भाग्य आजमाने का यह उत्तम अवसर है। यदि यह मौका हाथ से जाने दिया तो हाथ मलते रह जायेंगे। अपना निर्णय मक्कम किया। शुभ दिन पर सार्थ वसन्तपुर नगर से रवाना हुआ। थोड़े दिन के प्रयाण बाद वह एक महाटवी में पहुँचा। सबसे आगे केशव चल रहा था। अचानक उसके सामने विकराल सिंह आकर खड़ा हुआ। केशव ने भक्तामर स्तोत्र का स्मरण चालू किया। स्तोत्र के प्रभाव से तुरन्त सिंह वहाँ से दूम दबाकर भाग गया। यह देखकर सब सार्थजन बहुत खुश हुए। सबने सिंह भाग जाने का कारण पूछा। केशव ने भक्तामर स्तोत्र का वर्णन किया। कई लोगों ने भक्तामर स्तोत्र को कण्ठस्थ कर लिया।

अब सार्थ निर्विघ्न आगे बढ़ रहा था। अचानक एक दिन किसी कारण केशव सार्थ से पीछे रह गया। उस भयावह जंगल में अकेला पड़ गया और मार्ग भ्रष्ट हो गया। वह महाटवी के निर्जन और खतरनाक भाग में जा अटका। आगे कोई रास्ता नजर नहीं आ रहा था। वह इधर-उधर ताक रहा था कि सहसा पीछे से एक आवाज आयी हे मुसाफीर! ठहर जा। मैं तेरी मदद के लिए आ रहा हूँ। केशव ने पीछे मुड़कर देखा तो भगवा वस्त्र पहने, कपाल में कुङ्कुम से चन्द्राकार का तिलक किया हुआ, हाथ में कमण्डल लिया हुआ एक प्रौढ कापालिक, मान्त्रिक चला आ रहा था। वह और कोई नहीं किन्तु अज्ञ लोगों को ठगकर उन पर क्रूरतापूर्वक रसायन प्रयोग करता, मन्त्र के समय उनकी बली देना, उनकों मारकर स्वर्ण पुरुष उत्पन्न करना इत्यादि अनेक हीन कार्यों मे रत था। कई दिनों से किसी भूले भटके की राह में था। उसे आज शिकार मिल गया। उसने केशव से कहा - कहाँ जाना है? मैं सार्थभ्रष्ट हो गया हूँ। मैं वापस सार्थ की खोज कर रहा हूँ। कापालिक ने कहा मैं इस महाटवी के प्रत्येक मार्ग से परिचित हूँ। चिन्ता मत कर मैं तुम्हें वहाँ पहुँचा दूंगा। किन्तु मुझे तू बिल्कूल निर्धन दिखायी देता है। बता क्या तुझे धन की जरूरत

है? केशव तो धन के लिए कब से लालायित था। इसके लिए ही तो घर-बार छोड़कर परदेश चला था। तुरन्त जवाब दिया हाँ योगीजी। अब उस धूर्त कापालिक ने मायाजाल फैलाकर अपने जाल में फंसाना शुरु किया। देख्र मुसाफीर! इसके लिए तुम्हें हिम्मत करनी पड़ेगी। यहाँ से थोड़ी ही दूर पर रस कूपिका है। बिलकुल प्रकाश नहीं है उस कुएँ में। रस्सी की मदद से तुम उसमें उतरकर रस से तुम्बी भर लेना और मैं तुम्हें ऊपर खिंच लूंगा। रस की एक बूंद लोहे पर गिरते ही लोहा स्वर्ण बन जाता है। एक तुम्बी रस से तो तू नगर का सबसे बड़ा धनिक बन जायगा। मुझे तो उस रस की कोई आवश्यकता नहीं। हम तो वैसे भी फकीर हैं। हमारा भला धन से क्या नाता? तेरी कमजोर अवस्था देख्रकर मुझे दया आ गयी। इसलिए तुम्हें यह मार्ग बताया। वैसे भी परोपकार करना सन्तों का कर्त्तव्य है। किसी को दीन दुःखी देख्रकर भला हम कैसे सुखी रह सकते हैं। मेरा मानना है कि तेरा भाग्य ही तुम्हें यहां खिंच लाया है। यहाँ से बहुत नजदीक ही है रस कूपिका। अगर तेरी इच्छा हो तो चल तुझे बता दूँ। केशव उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गया। वह लोभाभिभूत हो गया। अगर कार्य की सिद्धि यहीं हो रही है तो दर-दर भटकने से क्या फायदा? उसने तुरन्त हामी भरी। दोनों साथ-साथ उस रस कूपिका के पास पहुँचे। केशव ने चारों बाजू नजर घूमाकर देखा। ऐसा लग रहा था कि इन गहन झाड़ियों में से कोई हिंस्र प्राणी निकलकर अभी ख्रा जायगा। कापालिक तो निश्चिंत था। उसने कहा हे मुसाफीर! इधर-उधर क्या देख्रता है। चल उतर इस रस कूपिका में। केशव ने रस कूपिका के पास जाकर उसमें झांका। अन्दर अन्धकार ही अन्धकार। यह देख्रकर उसके रोंगटे ख्रड़े हो गये। उसने सोचा अन्दर कोई अजगर होगा तो मुझे जिन्दा ही निगल जायगा। और इस भयानक अटवी को मैं अकेला कैसे पार करूँगा। मेरी स्थिति तो "आगे कुआ और पीछे ख्राई" जैसी है। इतने में कापालिक ने कहा सोचता क्या है? यह ले रस्सी और इसके सहारे उतर जा। केशव तो काँपने लगा। कापालिक बोला मुझे मालूम ही था कि यह तुम जैसों के बस की बात नहीं। तुम्हारे भाग्य में तो सिर्फ भिख्र माँगकर ख्राने का ही लिख्रा है। उतरना हो तो जल्दी उतर वरना मैं तो चला। व्यर्थ में मेरा समय बरबाद किया। कापालिक की मायावी बातों का केशव को ख्रयाल नहीं आया। अपने स्वाभिमान को ठेस पहुँचते देख्रकर केशव ने कहा ठहरो मैं अभी इसमें उतरता हूँ। उसने सोचा जिसके लिए घर से निकला हूँ उसके लिए साहस तो करना ही पड़ेगा। सोते हुए सिंह के मुंह में क्या हिरण स्वयं ही प्रवेश करते हैं? इसके लिए सिंह जैसे पराक्रमशाली को

भी प्रयत्न करना पड़ता है। जहाँ पुरुषार्थ वहीं अर्थ। उसने रस्सी थामी, कापालिक ने रस्सी का एक छोर थामकर उसके हाथ में तुम्बी पकड़ायी। वह रस्सी थामकर नीचे उतरा। अन्दर घोर अन्धेरे में देखा कोई पदार्थ चमक रहा है। किनारे पर खड़े रहकर तुम्बी रस से भर दी। वापस रस्सी पकड़कर कापालिक से कहा योगीजी अब रस्सी खिंचीए, मैंने तुम्बी भर ली है। उस धूर्त ने कहा ऐसा करो पहले इस तुम्बी को बांधकर ऊपर भेज दो। मैं धीरे-धीरे सावधानी से इसे ऊपर खिंचकर वापस रस्सी डालकर तुम्हें भी ऊपर खिंच लूंगा। अगर दोनों को एक साथ खिंचूंगा तो कहीं हडबडाट में इस तुम्बी का रस ढूल न जाय। कुएँ की दिवार से तुम टकराओगे तो भी रस ढुल जायगा कारण कि तुम्हारा वजन ज्यादा है और तुम्हें सावधानीपूर्वक खिंचना नामुमकीन। इसलिए पहले इसे बाँध दो। केशव तो फिर से उसकी ठगविद्या से ठगा गया। उसने तुम्बी बाँध दी। कापालिक ने तुम्बी लेकर पूरी की पूरी रस्सी कुएँ के अन्दर डालकर भाग गया। रस्सी केशव पर गिरते ही एक झटका-सा लगा। सारा मामला क्षणभर में समझ गया। अहो इस धूर्त का मायापन। थोड़ी देर के लिए तो चिन्ता में पड़ गया कि अब तो यहाँ से निकलने के सारे रास्ते बन्ध हो गये हैं। अपनी आयु यहीं समाप्त हो जायगी। दिग्मूढ हुआ यह सोचा रहा था कि एकाएक उसे भक्तामर पाठ का स्मरण हो आया। सर्व विघ्नहर भक्तामर स्तोत्र को तन्मय होकर गाने लगा। पलभर में चक्रेश्वरी देवी प्रत्यक्ष हुई। वह अपनी पीठ पर बिठाकर सार्थ के पास ले आयी। आठ बहुमूल्य रत्न प्रदानकर विलीन हुई। अब सार्थ के साथ वह भी चलने लगा। इतने में अचानक आक्रमण कर भिल्ल सब लोगों को लुटने लगे। केशव ने एक बार फिर महाविपत्ति जानकर भक्तामर स्तव का पाठ करने लगा। जिस-जिस भिल्ल ने लोगों को मारने के लिए तलवार-भाले उठाये थे उनके हाथ हवा में ही स्तम्भित हो गये। लाख प्रयत्न करने पर भी हाथ नहीं हिल रहा था। वे अब अनुनय-विनय करने लगे। जिन भिल्लों का हाथ हवा में स्तम्भित नहीं हुआ था वे ये सब देखकर भाग गये। भक्तामर स्तव पूर्ण होते ही केशव ने उसका स्मरण बन्ध किया। जैसे ही बन्ध किया वैसे ही उनके हाथ अपने आप छुट गये और बिना पीछे मुड़कर ऐसे भागे जैसे चूहा बिल्ली को देखकर। अब तो सार्थ के साथिओं का बहुमान भक्तामर पर अत्यन्त बढ़ गया। सार्थ एक महानगर में पहुँचा। वहाँ दो दिन रहकर आगे बढ़ने का कार्यक्रम तय किया। जिसको जो खरीदना और बेचना हो और जिस किसी भी वस्तु की जरूरत हो वे सब कार्य दो दिन के अन्दर कर ले इस प्रकार सार्थपति ने घोषणा की। केशव ने सोचा जिसके

लिए वह नगर से रवाना हुआ था वह कार्य तो सिद्ध हो चूका है अब आगे जाने से क्या फायदा? शेष जीवन धर्माराधना में व्यतीत करूँ। परमात्मा की कृपा से अब किसी बात की कमी नहीं है। दो दिन के बाद सार्थ रवाना होने जा रहा था। केशव ने सार्थपति के पास जाकर कहा कि मैं वापस वसन्तपुर लौट रहा हूँ। मेरा कार्य सिद्ध हो चूका है। सार्थपति एवं सार्थजनों ने सिंह एवं भिल्लों से रक्षा करने का बहुत आभार प्रकट किया। सार्थवाह ने बहुमानपूर्वक वस्त्र की भेंट दी एवं पाथेय का इन्तजाम कराया। हर्षाश्रु से सबने विदाई ली। केशव वसन्तपुर की ओर चला और सार्थ उससे विपरीत दिशा में आगे की मंजील की ओर बढ़ा। केशव अटवी-पहाड़ों को लांघता हुआ आगे बढ़ रहा था। वसन्तपुर अब ज्यादा दूर नहीं था। मध्याह्न का समय था। भीष्म गर्मी से पसीने से तर-बतर हो गया। गला सूख गया। प्राण कण्ठ को आ गये। एक डग भी भरने के लिए असमर्थ था। पानी की आश में चारों ओर देखा किन्तु निराशा ही हाथ लगी। अब भक्तामर के आठवें एवं नवमें श्लोक का स्मरण करने लगा। प्राण पंखेरू उड़ने के समीप थे। किन्तु जब तक सास तब तक आस। लगातार श्लोकों का स्मरण इस परिस्थिति में भी चालू रखा। महेनत अपना रंग लायी। चक्रेश्वरी ने आकर स्वादु जल की व्यवस्था की। जीभर पानी पीकर फिर कुछ देर आरामकर वापस चलना चालू किया। शाम तक वसन्तपुर नगर में पहुँच गया। सबसे प्रथम जिनालय में जाकर बहुत देर तक भावपूर्वक भक्ति की। उन रत्नों के प्रभाव से नगर के धनाढ्यों में अग्रिम स्थान पर पहुँच गया। जिस नगर में उसे केशु कहकर तुच्छतापूर्वक लोग बुलाया करते थे उसी नगर में लोग अब केशव सेठजी कहकर सम्मानपूर्वक बुलाने लगे। केशव सेठ अब अपने पुराने दिनों को याद करने लगा। अत्यन्त दरिद्रता, महेनत-मजदूरी, मुनि का सङ्गम आदि सबको याद कर विचार किया अहो धर्म का ही यह प्रभाव है कि मैं आज इस स्थिति में पहुँचा हूँ। धर्म की आराधना से तो मैं इस लोक में सुखी हो गया हूँ। अब मैं ऐसा कोई कार्य करूँ जिससे परलोक में भी अक्षुण्ण पुण्य का उपार्जन करूँ। सुबह होते ही देश-देशान्तर के श्रेष्ठ शिल्पी एवं कारीगरों को बुलवाया। अल्प अवधि में ही श्री ऋषभदेव के जिनालय के कार्य का श्री गणेश हुआ। देखते ही देखते कार्य की इतिश्री हो गयी। महामहोत्सव पूर्वक श्री ऋषभदेव की प्रतिष्ठा करवायी। मुक्त हाथों से दान दिया। अन्त में श्री ऋषभप्रासाद में भक्तामर का स्मरण करते हुए देहोत्सर्ग किया।

दशम श्लोक : नात्यद्भुतं भुवनभूषण...

भावार्थ : हे भुवन भूषण! हे प्राणिनाथ! पृथ्वी के ऊपर अद्‌भुत गुणों के द्वारा आपकी स्तवना करनेवाले आपके तुल्य होते हैं। (इसमें) आश्चर्य नहीं अथवा निश्चय से यहाँ जो (स्वामी) आश्रित को संपत्ति द्वारा अपने समान नहीं करता उससे क्या?

एकादशम श्लोक : दृष्टवा भवन्त...

भावार्थ : निमेष रहित देखने लायक ऐसे आपको देखकर मनुष्य की आँखें दूसरे स्थान पर सन्तोष प्राप्त नहीं करती। (जैसे) क्षीर सागर की चन्द्रकिरण समान उज्ज्वल दूध पीकर कौन मनुष्य लवण समुद्र के खारे जल को पीने की इच्छा करे?

एकादशम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा :

पाटण नगर की आज रौनक ही कुछ और थी। आबाल गोपाल नवीन वस्त्राभूषण से सज-धजकर रास्ते पर खड़े हुए थे। चौलुक्य वंश्य कुमारपाल महाराजा, भोपला पट्टराणी और महामंत्री वाग्भट भी आज अत्यन्त प्रसन्न नजर आ रहे थे। कुमारपाल अपने अन्तःपुर एवं सभाजन सहित कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्य के स्वागत के लिए नगर के मुख्य द्वार पर खड़े-खड़े इन्तजार कर रहे थे। आचार्यश्री का आगमन होते ही आकाश जयनाद से गूंज उठा। सुहागनें सुन्दर स्वर से गीत गाने लगीं। राजा कुमारपाल ने आचार्य श्री के चरणों में गिरकर दंडवत् प्रणाम किया। आचार्य श्री के प्रताप से ही कुमारपाल परम अरिहन्त का भक्त बना था। उनके नाम मात्र से भी कुमारपाल रोमाञ्चित हो जाता था तो उनके दर्शन की तो बात ही क्या? धूम-धामपूर्वक नगर प्रवेश समाप्त हुआ। सब आचार्य श्री के ठहरने के स्थान पर इकट्ठे हुए। आचार्य श्री ने मधुर स्वर में देशना प्रारंभ की -

कल्लाणकोडिजणणी, दुरन्तदुरिआरिवग्गनिट्ठवणी ।
संसारजलहि तरणी, इक्कुचिय होइ जीवदया ।।

हे महानुभावों! क्रोड़ों कल्याण को उत्पन्न करनेवाली, दुःख से अन्त हो ऐसे पाप रूपी शत्रु वर्ग को दूर करनेवाली, संसार समुद्र में नाव समान एक जीवदया ही है।

इस जीवदया के प्रभाव से अनेक आत्माओं ने शाश्वत सुख को प्राप्त किया है। इन्द्रिय संपूर्णता, शारीरिक नीरोगता और शाता वेदनीय की प्राप्ति इसका ही फल है। शरीर रूपी साधन उत्तम हो तो मोक्ष रूपी साध्य की प्राप्ति बिना विघ्न हो जाती है। इसलिए सब दानों में अभयदान को श्रेष्ठ कहा है। जिनाज्ञा पूर्वक की जीवदया

निस्सन्देह अनेक प्रकार के सौभाग्यों का कारण बनती है। इसलिए हे भव्यजनों! किसी भी जीव की मन, वचन, काया से हिंसा मत करो। जैसे तुम सुख की ही इच्छा करते हो वैसे दूसरे जीव भी केवल सुख की इच्छा रखते हैं। जो अपने को अप्रिय है वह दूसरे को भी अप्रिय है। इसलिए किसी का दिल मत दुभाओ। जीवन की संपूर्ण आय का व्यय करके भी जीव जीने की आकाङ्क्षा रखता है। सामान्य किड़े से लेकर देवाधिराज देवेन्द्र में भी जीने की आकाङ्क्षा समान है। कोई मरना पसन्द नहीं करता है। उत्कृष्ट जीवदया का पालनकर तुम भी लोकाग्रभाग पर जाकर विराजमान हो।

गुरु का व्याख्यान पूर्ण हुआ। सब अपने-अपने घर लौट गये। उसी नगर में कपर्दी नामक वणिक् श्रावक रहता था। उसने भी आज तन्मय होकर गुरुदेव के एक-एक शब्द को झेला था। घर आकर गुरुदेव की देशना पर चिन्तन मग्न हो गया। अहो गुरुदेव की मलयगिरि के चन्दन समान शीतल वाणी सबको शान्ति देनेवाली है। मैं हर रोज जिनपूजा, सामायिक, प्रतिक्रमण एवं भक्तामर स्तोत्र करता हूँ किन्तु उनमें भावों का सम्मिश्रण नहीं है। इसलिए जैसा आनन्द आना चाहिए वैसा आनन्द आज दिन तक जीवन में प्रकट नहीं हो पाया है। जयणा एवं चित्तलय की तो बात ही दूर रही किन्तु धर्मकार्य में भी आजीविका की चिन्ता लगी रहती है। कार्य कोई और मन कहीं, इससे धर्मक्रिया भला कैसे फलीभूत हो सकती है? गुरुदेव ने आज मेरी आँखें उघाड़ दी। मैं भी अब जिनाज्ञापूर्वक धर्म का आचरण करूँगा। आज उसके दिमाग में केवल आचार्य श्री के मधुर शब्द ही गूंज रहे थे। देखते ही देखते शाम होकर ढल गयी। आवश्यक क्रियाएँ कर अपने बिस्तर पर लेटा जीवमात्र के साथ मैत्रीभाव का चिन्तन करता हुआ सो गया।

सुबह ब्रह्ममुहूर्त के समय उठकर पूर्वदिशा की ओर मुंहकर नमस्कार मन्त्र का स्मरण किया। तत्पश्चात् प्रतिक्रमण पूर्णकर भक्तामर स्तव का पाठ शरु किया। आज सुबह से ही उसका चित्त स्वस्थ एवं आनन्द से छलक रहा था। रोजी रोटी की चिन्ता आचार्यदेव के सद्उपदेश से विलीन हो गयी थी। ग्यारहवें श्लोक का स्मरण कर रहा था तभी चक्रेश्वरी देवी प्रकट हुई। उसने कहा कपर्दी! मैं तुम पर तोषायमान हुई हूँ जो माँगना हो वो माँग। देव का दर्शन निष्फल नहीं होता। कपर्दी ने कहा जीवन दुःख-दारिद्र में ही बिता है। अब आप ऐसा करीए की आगे भविष्य में आजीविका की चिन्ता न रहे जिससे मेरा जीवन धर्ममय एवं शान्तिमय व्यतीत हो। चक्रेश्वरी ने कहा - आज शाम को तेरे घर पर एक कामधेनु आयगी। उसके

दूध के घड़े भरना। उन घड़ों में रहा हुआ दूध स्वर्ण रूप में परिवर्तित हो जायगा। कहकर देवी अन्तर्लीन हुई। कपर्दी नित्यप्रति के समान जिनपूजा, सामायिक आदि अनुष्ठानों मे व्यस्त हुआ। आज उसका मन अत्यन्त प्रफुल्लित था। उसका मन कह रहा था कि आदिनाथ प्रभु की मूर्ति के सामने ही देखता रहूँ। कई घंटों तक उस मूर्ति को निहालता रहा। उसके बाद वापस घर लौटा। जरूरी काम निपटाकर जप-ध्यान में लीन हुआ। देखते ही देखते सन्ध्या का समय हो गया। जिनालय में जाकर मंगल दीप, आरति एवं भाव पूजाकर लौटकर घर के बाहर बैठ गया। उसकी नजरें चारों ओर दौड़ रही थी किसी की प्रतीक्षा में। देवी कथनानुसार उसकी नजर एक विलक्षण गाय पर पड़ी। वह समझ गया यही वह कामधेनु है। आदरपूर्वक प्यार से हाथ फिराता हुआ घर में ले आया। धूप-दीप आदि उसके आगे कर सुन्दर मटके में दोहने लगा। दोहते-दोहते उसने एकतीस घड़े भर लिये। चक्रेश्वरी प्रत्यक्ष हुई। बोल अब तो तेरी कोई इच्छा अवशेष नहीं है? कपर्दी ने कहा मैं एक बार कुमारपाल राजा एवं उनके अन्तःपुर को परमान्न से भोजन कराना चाहता हूँ। कृपा कर जब जरूरत पड़े तब एक बार फिर कामगवी का रूप करके आइएगा। चक्रेश्वरी ने कहा-भक्तामर के ग्यराहवें श्लोक का जब तुम निरन्तर ध्यान करोंगे तब मैं प्रत्यक्ष हो जाऊँगी। देवी तिरोभूत हुई। देखते ही देखते दूध के एकतीस घड़े स्वर्ण में तबदील हो गये। स्वर्ण के प्रभाव से आलीशान बंगला खरीदा। जरूरी चीजों का संग्रह किया। दर्शनीय वस्तुओं को इकट्ठाकर बंगले की शोभा बहुत सुन्दर बनायी। बत्तीसवें दिन सुबह भक्तामर का ग्यारहवाँ श्लोक निरन्तर जपने लगा। चक्रेश्वरी साक्षात् हुई। कपर्दी ने कहा आज मैं अन्तःपुर सहित राजा को निमन्त्रण देने जा रहा हूँ। इसलिए आप कामधेनु के रूप में आने की कृपा करें। देवी 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हुई। कपर्दी अब नगर के बहुमान्य लोगों में गिना जाने लगा। उसका उस नगर में सब लोग सम्मान करते थे। नगरश्रेष्ठिओं के साथ वह राजदरबार में पहुँचा। प्रणामकर बहुमूल्य रत्नों से भरी थाली राजा के आगे भेंट रखी और नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि आप अपने अन्तःपुर सहित इस नाचीज के यहाँ भोजन के लिए पधारकर मेरे घर के आङ्गन को अपने चरणों से पावन कीजिए। कुमारपाल ने कुछ देर सोचकर आने का वायदा किया। कपर्दी खुश हुआ अपने घर लौटा। अन्तःपुर एवं वाग्भट मन्त्री सहित राजा कपर्दी के बंगले पर आया। घर की शोभा निहालकर आश्चर्यचकित हुआ। राजा के आदमियों ने जाकर रसोईघर में देखा। वहाँ किसी भी प्रकार की कोई तैयारी नहीं थी। आकर राजा को समाचार दिये कि यहाँ तो

खाना-बाना कुछ नहीं बन रहा है। व्यर्थ में यह बनिया बेवकूफ बना रहा है। राजा ने मन्त्री के मुख की ओर देखा। मन्त्री ने कहा चलो भोजन की थाली पर बैठ जाय फिर देखें आगे क्या-क्या होता है? सभी लोग भोजन की थाली पर बैठ गये। अब कामगवी को दोहकर परमान्न पिरसा जाने लगा। उसकी सुगन्ध से ही सबके मुंह में पानी आ गया। शिष्टाचार के कारण किसीने मुंह में कवल नहीं डाला। जब सबको परमान्न पिरोसा गया तब राजा ने खाना शुरु किया। जीवन में पहली बार आज इतना स्वादिष्ट, सुगन्धि आहार खाने को मिला था। उसकी तारीफ करते हुए सबने पेटभर खाना खाया। सब अत्यन्त तृप्त होकर उठे। राजा ने देखा कि इतने लोगों के द्वारा जी भर खाना खाने पर भी परमान्न कम नहीं पड़ा और रसाई की कोई तैयारी दिखायी नहीं दे रही है तो माझरा क्या है? उसने कपर्दी को बुलाकर वृत्तान्त पूछा। कपर्दी ने भक्तामर स्तव की महिमा एवं उसके प्रभाव का वर्णन किया। बाद में सभी को स्वर्ण से भरे हुए घड़े दिखाये। राजा और मन्त्री देखकर अत्यन्त खुश हुए। निस्संकोच उसके उपभोग की आज्ञा प्रदान की। कपर्दी ने सभी राजपरिवार एवं सभाजनों को बहुमूल्य भेंट देकर विदाई दी। बात हेमचन्द्राचार्य के कानों तक भी पहुँची। सारा वृत्तान्त सुनकर हेमचन्द्राचार्य अत्यन्त खुश हुए कि इस कलिकाल में भी कपर्दी जैसे श्रावक मौजूद हैं। कपर्दी ने बहुत सालों तक जैनधर्म की प्रभावना की। नित्य प्रति भक्तामर स्तव का स्मरण करता था। दान उसका व्यसन बन गया। अन्तिम समय में संलेखनापूर्वक आदिनाथ का ध्यान करता हुआ इस नश्वर देह का त्यागकर स्वर्ग में ऋद्धिमान देव बना।

प्रश्न : प्रतिमा कितने प्रकार की ?

(१) व्यक्त प्रतिमा - जिस भगवान का शासन हो उस भगवान की प्रतिमा।

(२) क्षेत्र प्रतिमा - चोवीशी के चोवीश तीर्थंकरों के पट्ट (पाटला) या चोवीशी भरानी।

(३) महा प्रतिमा - उत्कृष्ट १७० जिनेश्वरों की प्रतिमा भरवानी।

प्रश्न : कषाय के परिणाम कौन से?

(१) परिताप, (२) उद्वेग, (३) वैर, (४) सद्गति का नाश।

द्वादशम श्लोक : यैः शान्तराग...

भावार्थ : हे जगत् त्रय के अद्वितीय तिलक समान! शान्त रस से चमकते जिन परमाणुओं के द्वारा आप बनाये गये हो, वे परमाणु भी पृथ्वी पर निश्चय से उतने ही हैं। क्योंकि आपके समान दूसरा रूप नहीं है।

द्वादशम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा :

अङ्गदेश में ऊँचे गगनचुम्बी महलोंवाली, सुन्दर दुकानों की श्रेणिओं से सुशोभित, सरोवर, नृत्यशालाएँ, मनोहर उद्यान आदि से अत्यन्त रमणीय ऐसी चम्पा नामक नगरी थी। वहाँ सिंह समान पराक्रमी, दान व्यसनी, तटस्थ, सागर समान गम्भीर कर्ण नामक राजा राज्य करता था। उसका जिनधर्मरक्त, चातुर्य, माधुर्य, गांभीर्य, आदि गुणों से युक्त सुबुद्धि नामक मन्त्री मन्त्रियों में शिरोमणि था। दरबार में देश-विदेश की बातें होती तथा ज्ञान की चर्चा में भी समय व्यतीत होता। कभी नृत्य, हास्य, विनोद में सभा मग्न हो जाती तो कभी किसी गम्भीर अपराध या फरियाद का निर्णय देने में। इस प्रकार कई वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन राज दरबार में एक बहुरूपीया आया जिसने क्षुद्र भूत-प्रेतादि साध रखे थे। मनोरञ्जन कर लोगों का दिल बहलाता था। राजा कर्ण के दरबार में भी अपने कलात्मक प्रदर्शन की आज्ञा मांगी। राजा ने सिर हिलाकर आज्ञा प्रदान की। अब बहुरूपीये की विनोद लीला शुरु हुई। सब एकतान होकर उसीकी ओर देख रहे थे। उस बहुरूपीये ने सफेद वृषभ पर बैठे हुए, सफेद वर्णवाले, जटा जिसमें चन्द्र शोभित हो रहा है ऐसा जटावान्, गङ्गा को धारण किया हुआ, पूरे शरीर पर सर्प लपेटा हुआ, भस्म लिप्त शरीरवाला, पार्वतीपति ऐसा शङ्कर का रूप विकुर्वित किया। सब लोग उसके रूप को देखकर अवाक् रह गये। क्या वास्तव में शङ्कर इस राजसभा में उतर आये हैं? इस प्रकार विचार करने लगे। कितनों ने साक्षात् शङ्कर मानकर हाथ जोड़े। उस धूर्त की लीला आगे बढ़ी। शिव के रूप में कितने ही बीभत्स नृत्य आदि करके सबकों लोटपोट कर दिया। अपनी विद्या समेट कर मूल रूप में आया। सभाजनों ने सोचा अरे यह तो बहुरूपीया है हम तो वास्तविक शिव समझने लगे थे। अब विष्णु का रूप बिखेरा क्षुद्र भूत की सहायता से। शङ्ख, गदा, चक्र और शार्ङ्ग धनुष्ययुक्त चार हाथवाले, कृष्णवर्णी, गरुड़ वाहन पर विराजित, लक्ष्मी से युक्त ऐसे विष्णु का रूप विकुर्वा। फिर से उस धूर्त ने विष्णु का रूप भी हंसी का पात्र बनाया। सभाजन तो एक बार फिर विस्मय सहित आँखें फाड़कर देखते रह गये। इस बीच सुबुद्धि मन्त्री ने उठकर राजा कर्ण से विनती की कि धर्म का अपमान करनेवाला

नाटक यही रोको। ये सभाजन तो अबुध हैं इन्हें धर्म के अपमान का ख्याल क्या आयेगा? राजा ने एक नजर सभा की ओर डाली। सब लोग उसे देखने में लयलीन थे। बीच में अन्तराय डालना अच्छा नहीं समझा। मन्त्री की वास्तविकता से भी राजा अनजान नहीं थे। किन्तु जहाँ बहुमत हो वहाँ एकमत की कितनी चलती है? उस धूर्त्त बहुरुपीये को ख्याल आ गया कि यह मंत्री मेरा कार्यक्रम बन्ध कराना चाहता है। मन्त्री से बदला लेने का निश्चय किया। काँटे की तरह सुबुद्धि आँखों में खुंचने लगा। उसने सोचा अभी अपनी कला का प्रदर्शन करूँ अन्त में इस मन्त्री का हिसाब भी चूकता कर दूंगा। उसके बाद ब्रह्मा का रूप बनाया। हंस वाहन, चारमुख, सावित्री से युक्त ब्रह्मा के रूप को देखकर सब शिर धूनाने लगे की क्या जगत्कर्ता एवं नियंत्रक यह ब्रह्मा साक्षात् इस पृथ्वीतल पर उतर आये हैं? थोडी देर मनोरञ्जन कर गणेशजी का रूप निर्मित किया। बडा भारी भरकम पेट, लम्बी सूंड, छोटे चूहे पर बैठे हुए। चूहे ने सभा के चारों कोने में चक्कर लगाया। गणेशजी की बडी तुन्द देखकर अपना पेट पकड-पकडकर हंसने लगे। सुबुद्धि मन्त्री एक बार फिर उठा। उसने बहुरुपीये से कहा महापुरुषों के रूप के बदले किसी दूसरे हाथी, घोड़े आदि के रूप बनाकर सभा का मनोरञ्जन करो। सात्त्विक पात्रता को भजो। इन महापुरुषों के रूप को भजकर इनकी पात्रता को दूषित मत करो। सब लोगों ने सोचा यह कबाब में हड्डी कहाँ से आ गयी? आज जिन्दगी में पहली बार इतना मजा आ रहा है लेकीन यह मन्त्री का बच्चा सब किर-किरा कर रहा है। एक श्रेष्ठी ने कहा मन्त्रीजी चलने दो यह नाटक। वरना हमारा ऐसा भाग्य कहाँ कि इतना महान कलाकार इस नगर में आये। जीवन में पहली बार आज आनन्द आ रहा है और आप उसे छिनना चाहते हैं? सब लोगों ने श्रेष्ठी के सूर में सूर भरा। मन्त्रीजी ने सोचा जब राजा भी मौन है और सभा भी एक हो गयी है तो यहाँ बोलने से उलटी मुसीबत मोल लेनी। चुपचाप अपने स्थान पर मन्त्रीजी बैठ गये। अब तो उस पाखण्डी को खुले हाथ छुट मिल गयी। मन्त्री को दाढ़ में रखे नाटक भजने लगा। कार्तिकेय, बुद्ध, हनुमान, राम आदि अनेक पात्र कर नाच-गान, हाव-भाव दिखाकर सबको मन्त्र मुग्ध कर दिया अब उसने घोषणा की महामन्त्री सुबुद्धि! अब मैं आपके तीर्थंकर को भी मोक्ष से नीचे उतारकर दिखाता हूँ। बात सुनते ही मन्त्रीजी का सिर चक्करा गया। अहो इसकी धूर्त्तता। मुझसे बदला लेने की तरकीब आजमा रहा है। अब क्या करूँ? इस प्रकार विचारते उसे भक्तामर का बारहवाँ श्लोक याद आया।

भक्तामर के बारहवें श्लोक को एकाग्रतापूर्वक मन में स्मरण करने लगा। अब धूर्त्त बहुरूपीया तीर्थंकर का पात्र अदा करने के लिए सज्ज था। जैसे ही वह तीर्थंकर का रूप बनाने लगा वैसे ही चक्रेश्वरी देवी ने आकर उसके गाल पर इतना जोर का तमाचा लगाया कि जमीन पर लड़खड़ाते हुए गिर पड़ा। उसके साधे हुए सारे भूत भी भयभीत होकर भाग गये। उसकी सिद्ध विद्या भी नष्ट हो गयी। थप्पड़ इतना जोर का लगा था कि कुछ देर के लिए तो उसकी समझ में कुछ नहीं आया कि यह अचानक क्या हुआ? दिन में तारे नजर आने लगे। देवी ने कहा - मूर्ख शेखर! बृहस्पति भी जिनका वर्णन करने के लिए असमर्थ है, निरञ्जन, निराकार, अगोचर चरित्रवान् ऐसे जिनेश्वर के रूप को करने की इच्छा करता है? यदि असंख्यात देव सभी मिलकर एक अंगूठे प्रमाण अपना रूप बना ले तो भी जिनेश्वर के पैर के अंगूठे की भी शोभा प्राप्त नहीं कर सकते। यदि जीवित की आशा है तो सुबुद्धि मन्त्री के चरणों में पड़कर उनसे क्षमायाचना मांग वरना तेरी खैर नहीं। शीघ्र ही जाकर महामन्त्री के चरणों में गिरा। क्षमानिधि मन्त्री ने तत्काल उसे क्षमा कर दिया। राजा और सभाजन मन्त्री की वीतराग पर अतुट श्रद्धा देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। भक्तामर स्तोत्र पर विस्तार से सुबुद्धि मन्त्री ने विवेचन किया। बहुरूपीया भी जैनधर्म के प्रति आदरवाला हुआ। सुबुद्धि मन्त्री अब पहले से भी अधिक मान्य बना। सबने भक्तामर एवं सुबुद्धि की बहुत प्रशंसा की।

प्रश्न : पृथ्वी की शोभा कैसे मानवों से?

विहलं जो अवलंबइ आवइपडिअं जो समुद्धरइ।
सरणागयं च रक्खइ, तिसु तेसु अलंकिया पुहवी ॥

विह्वलों को आलंबनभूत, विपत्तिग्रस्त का उद्धारक और शरणागत का रक्षक व्यक्ति इस पृथ्वी के आभूषण हैं।

प्रश्न : कलिकाल के कल्पवृक्ष कौन से?

ज्ञानी विनीतः सुभगः सुशीलः प्रभुत्ववान् न्यायपथप्रवृत्तः।
त्यागी धनाढ्यः प्रशमी समर्थः पंचाप्यमी भूमिषु कल्पवृक्षाः ॥

विनीतज्ञानी, शीलयुक्त सौभाग्यशाली, न्यायी सत्ताधीश, उदार धनी, सहनशील शक्तिशाली ये पांचो कलिकाल के कल्पवृक्ष हैं।

त्रयोदशम श्लोक : वक्त्रं क्व ते...

भावार्थ : देव, मनुष्य और नागकुमार के नेत्रों को हरण करनेवाला तथा संपूर्ण तीनो लोकों की उपमा को जितनेवाला आपका मुख कहाँ ? (और) कलंक से मलीन ऐसा चन्द्र का बिम्ब कहाँ? (कि) जो (चन्द्रबिम्ब) दिन में जीर्ण पत्र समान हो जाता है।

चतुर्दशम श्लोक : सम्पूर्ण मण्डल...

भावार्थ : हे तीन जगत के ईश्वर! संपूर्ण मंडलवाले (पूर्णिमा के) चन्द्र की कला के समूह समान उज्ज्वल आपके गुण तीनों जगत का उल्लंघन करते हैं। (क्योंकि) जो एक नाथ का आश्रय कर रहे हों उनकी इच्छा अनुसार विचरण करते हुए कौन रोक सकता है?

त्रयोदशम-चतुर्दशम श्लोक पर प्राभाविक कथा :

अनेक जिनमन्दिर, श्रद्धालुओं से शोभित धर्मनगरी पाटण। वहाँ सत्यक नामक श्रेष्ठी निवास करता था। उसकी एक पुत्री हुई जिसका नाम रखा डाही। अपने नाम अनुरुप डाही बचपन से ही चतुर एवं बुद्धिशाली थी। माता-पिता के धर्म संस्कार उसे विरासत में मिले थे। आठ वर्ष की उम्र तक उसने कई सूत्र कण्टस्थ कर लिये थे। हर रोज अष्ट प्रकारी पूजा करना एवं **भक्तामर स्तव का प्रातः, मध्याह्न एवं सायं तीनों समय पाठ करना उसका नित्यक्रम बन गया।** आठ वर्ष की छोटी उम्र में ही उसने नियम धारण किया कि पञ्चासर पार्श्वनाथ एवं हेमचन्द्राचार्य की पादुका के दर्शन किये बिना मुंह में पानी नहीं डालना। और भी रात्रीभोजन, कन्दमूल, अभक्ष्य वस्तुओं का त्याग आदि कई नियम ग्रहण किये हुए थे। उसकी बुद्धि अतितीव्र थी। किसी भी वस्तु को देखते ही या कुछ भी सुनते ही शीघ्र उसे याद हो जाता। अल्पकाल में ही सभी कलाओं में पारङ्गत हो गयी। भरुच नगर के श्रेष्ठी पुत्र के साथ डाही की सगाई तय की गयी। समय द्रुत गति से जा रहा था। डाही अपने नियम के विषय में अडोल थी। कई वर्ष डाही के धर्म में एवं हास्य-विनोद में व्यतीत हुए। अब वह विवाह लायक हुई। सत्यक श्रेष्ठी ने भरुच नगर में श्रेष्ठी के यहाँ विवाह का मुहूर्त निकालने का कहलावा भेजा। डाही के ससुर ने विवाह का शुभ मुहूर्त निकालकर भेजा एवं कहा कि अमुक दिन बरात के साथ पाटण नगर पहुँचेंगे। देखते ही देखते विवाह का दिन नजदीक आ गया। सत्यक सेठ ने बरात के स्वागत की तैयारी शानदार ढंग से कर रखी थी। अपनी ईकलौती पुत्री के विवाह के लिए पानी की तरह पैसा बहाया था। किसी बात की कमी नहीं

रखी। शुभ दिन पर भरुच नगर से बरात रवाना होकर पाटण पहुँची। सत्यक ने जोरदार ढंग से उनका स्वागत किया। विवाह की तैयारी देखकर सभी बराती आश्चर्य चकित हो गये। निश्चित दिन पर विवाह सम्पन्न हुआ। कुछ दिन वहाँ रुककर वापस श्रेष्ठी भरुच जाने के लिए तैयार हुए। सत्यक ने कन्यादान में सोना, चांदी, नगद, वस्त्र आदि देने में कोई कमी नहीं रखी। डाही ने भी अन्तिम बार अपने माता-पिता से मिलकर विदाई ली। डाही सहित बरात भरुच नगर के लिए रवाना हुई। साथ में किसीने भी देवाधिदेव की प्रतिमा नहीं ली थी। अगले दिन सुबह खाने का समय हुआ। डाही को भी भोजन पिरोसा गया। किन्तु पञ्चासर पार्श्वनाथ एवं हेमचन्द्राचार्य की प्रतिमा के दर्शन नहीं होने के कारण डाही ने कुछ नहीं खाया। सब लोगों ने बहुत समझाया किन्तु डाही कुछ भी नहीं बोली। बात ससुरजी के कानों तक पहुँची। उन्होंने भी आकर कहा बहू! अब खा ले। माता-पिता के वियोग का दुःख कितने दिन वहन करेगी? वैसे भी बेटी पराया धन होती है। जन्म कहीं होता है और जीवन बीताना कहीं और। इसलिए मेरा कहना मान भोजन कर ले। हम सब तुम्हारे माता-पिता के समान ही तो हैं। किन्तु डाही ने कुछ नहीं खाया और न ही अपनी प्रतिज्ञा के बारे में कुछ कहा। सब बराती भी बहुत दुःखी हुए। किसी ने कुछ नहीं खाया। सब भूखे ही सो गये। ससुरजी ने सोचा जीवन में पहली बार माता-पिता से अलग हुई है तो दुःख लगना स्वाभाविक है। आज नहीं तो कल जरूर इसका गम दूर हो जायगा। रात हो गयी सब सो गये। डाही अकेली बैठी हुई भक्तामर स्तव के तेरहवें-चौदहवें श्लोक में लीन थी। लगातार उन दो श्लोकों का स्मरण कर रही थी। आज जीवन में पहली बार पार्श्वनाथ एवं हेमचन्द्राचार्य की पादुका के दर्शन नहीं हुए थे। इसलिए उसकी नींद नहीं लग रही थी। खाना न खाने का उसे कोई गम नहीं था। उसका दिल तो केवल देवाधिदेव के दर्शन के लिए तड़प रहा था। मध्यरात्री के समय अचानक उस विरान जगह में दिव्य उद्योत हुआ। देवी ने प्रकट होकर कहा मैं आदिनाथ की सेविका चक्रेश्वरी हूँ। आदिनाथ की स्तुति करने से तेरे दुःख निवारण के लिए यहाँ आयी हूँ। तुझे किस बात की कमी है? व्यर्थ ही इतना दुःख क्यों वहन कर रही है? डाही ने कहा मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करो तो मैं भोजन करूँगी। देवी ने उसे तीन वस्तुएँ दी और कहा यह विषघ्न हार अपने गले में डालना। सुबह के समय इस हार की मध्य मणि से अत्यन्त महिमावाली श्री पार्श्वप्रभु की प्रतिमा प्रकट होगी। सबके आगे उस प्रतिमा को वन्दनकर भोजन करना। दूसरी दिव्य, अम्लान, ऐसी फूलमाला अर्पित कर कहा

यह माला भरुच नगर में रहे हुए मुनिसुव्रत स्वामी के कण्ठ में आरोपित करना। रत्नमाला के समान यह माला नित्य सतेज रहेगी। और तीसरी गुरु पादुका अर्पित कर कहा - इसे हेमचन्द्राचार्य के चरण युगल समझकर नित्य वन्दन करना। भरुच नगर में रही हुई श्री मुनिसुव्रत स्वामी की प्रतिमा एवं गुरु पादुका को वन्दन करने से अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण हो जायगी। कारण कि सभी जिनेश्वर समान गुणवाले एवं समान फल देनेवाले हैं। इस प्रकार कहकर देवी अदृश्य हुई। प्रातःकाल सभी ससुरजी आदि बैठे हुए थे। उसके गले में रहे हुए दिव्य हार से पार्श्वप्रभु की प्रतिमा प्रकट हुई। सब विस्मित हुए। चैत्यवन्दनादि कर डाही ने पारणा किया। सभी डाही पर बहुत खुश हुए। सबकी निगाहों में उसका मान अत्यन्त बढ़ गया। ससुरजी ने सोचा अपने घर में तो साक्षात् लक्ष्मी आयी है। क्रम से भरुच नगर पहुँचे। महोत्सवपूर्वक श्री मुनिसुव्रत स्वामी के गले में वह दिव्य पुष्पमाला आरोपित की। उस माला के प्रभाव से मूर्ति का तेज पहले से भी अधिक हो गया। गुरु पादुका गृहमंदिर में स्थापित किये। अपने धर्म कौशल से कई लोगों को धर्म मार्ग पर लगाया। डाही का प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर उसके पति, ससुर, सासु आदि अत्यन्त दृढ़धर्मी हुए। उसके गले में रहे हुए विषघ्न हार से कई लोगों के विष को दूर किया। अब प्रतिदिन श्री मुनिसुव्रत स्वामी की भक्ति में अधिक समय व्यय करती। भक्तामर स्तवन तीनों समय मधुर स्वर से गाकर अपना हर्ष प्रकट करती। भक्तामर के प्रभाव से उसने कितनी ही बार सङ्कट टाले। सबके आगे उसके गुणों का वर्णन करती। अनेक प्रकार की तपस्या, अनुष्ठान आदि कर उद्यापन किया। स्वामिवात्सल्य एवं अष्टाह्निका महोत्सव कराया। उसने नम्र एवं दयनीय स्वभाव से सबके दिल को जीत लिया। लम्बे काल तक सुखोपभोगकर अन्त समय में देवाधिदेव का नाम लेते हुए एवं सर्व जीवों के साथ क्षमा याचना करते हुए प्राण त्यागकर सद्गति को भजनेवाली हुई।

प्रश्न : जिनपूजन का फल क्या?

जिनस्य पूजनं हन्ति प्रातः पापं निशाभवम् ।
आ जन्मविहित मध्ये, सप्तजन्मकृतं निशि ॥

प्रातः की पूजा रात के पाप का, मध्याह्नकी पूजा संपूर्ण जन्म के पापों का और शाम की पूजा सात भवों के पापों का नाश करती है।

पञ्चदशम श्लोक : चित्रं किमत्र...

भावार्थ : (हे प्रभु!) जो देवांगनाओं के द्वारा आपका मन जरा भी विकार के मार्ग प्रति नहीं ले जाया गया, इसमें क्या आश्चर्य? (क्योंकि) पर्वतों को कंपानेवाले प्रलयकाल के वायु द्वारा क्या कभी भी मेरु पर्वत का शिखर कंपाया गया है?

पञ्चदशम श्लोक पर प्राभाविक कथा :

अयोध्या नगरी में दुष्टों का निग्रह करनेवाला और सज्जनों पर अनुग्रह करनेवाला सज्जन नामक राजा था। सज्जनों का सज्जन राजा हितैषी था। उसका राज्य संचालन रामराज्य की याद दिलाता था। संपूर्ण नगरी में शांतिमय वातावरण देखकर दूर-दूर से व्यापारी अयोध्या में आकर बसते थे। सज्जन राजा प्रजावत्सल एवं नीति आग्रह वाला था। उसकी नीति एवं पुण्य से आकृष्ट होकर परदेश से व्यापारी व्यापार के लिए प्रतिदिन आते रहते थे। नित्य नये लोगों के आवागमन से नगरी का दृश्य हररोज कोई नया ही दिखायी देता। एक दिन राजा किसी प्रमाद अवस्था में बैठा हुआ था कि अचानक दुष्ट व्यन्तरी ने मौका देखकर उसके शरीर में प्रवेश कर डाला। भूतिनी के आवेश से राजा प्रलाप एवं विलाप करने लगा। कभी हसता तो कभी घंटों तक बेभान अवस्था में पड़ा रहता था। कभी किसी को मारने के लिए दौड़ता और कभी घड़ा भर दूध गड़गड़ाहटकर पी जाता। राजा के चारों ओर, उसकी एवं अन्य जनों की सुरक्षा के लिए कड़ा पहरा लगाया गया। राजा के दुःख से प्रजा भी अत्यन्त चिंतित थी। प्रजावत्सल राजा के स्वास्थ्य की चिन्ता सभी राजदरबारियों को भी सता रही थी। अनुभवी वैद्य एवं बड़े-बड़े मान्त्रिकों को बुलाया गया किन्तु सब निरर्थक। शांति एवं विघ्न निवारण के लिए हवन कराये गये किन्तु निष्फलता ही हाथ लगी। कई लोगों को राजा की पीड़ा की चिन्ता से खाना भी हजम नहीं होता था। राजा का महामन्त्री भी राजा की पीड़ा के निवारण के लिए कई नये उपायों को आजमा रहा था किन्तु विरक्त व्यक्ति पर कामिनी के कटाक्ष के समान सब व्यर्थ हो रहे थें। । फिर भी उसने हिम्मत नहीं हारी। राजा को ठीक करने की हर संभव कोशिश पूर्ववत् जारी थी। राजमहल में राणिओं के आक्रन्द की कोई सीमा नहीं थी। महामन्त्री उन्हें भी जाकर दिलासा देता कि यह वक्त रोने-धोने का नहीं किन्तु कुछ कर गुजरने का है। अगर आप हिम्मत हार जायेंगी तो हम आपकी चिन्ता करे या राजाजी की। इसलिए आप शोक मत करीए अभी प्रयत्न जारी है। हमारे आदमी चारों ओर गये हुए हैं वे कोई न कोई उपाय जरूर निकाल लायेंगे। इस प्रकार राणिओं को समझाकर वह एकान्त कमरे में जाकर शान्तता एवं

एकाग्रतापूर्वक सोचने लगा। अचानक उसके दिमाग में बिजली-सा विचार आया। अहो! बगल में छोरा गांव में ढिंढोरा। उत्तम गन्ध-हस्ती को छोडकर गधे के पीछे भाग रहा हूँ। महामहिमावान् जैनाचार्य श्री गुणसेनसूरि साक्षात् इस अयोध्या में हाजिर हैं और मैं उनको बिसरकर न जाने अनजान में कहाँ-कहाँ मारा भटकता फिर रहा हूँ। आराम कक्ष से निकलकर सीधे मन्त्रीश्वर आचार्य गुणसेनसूरि के पास पहुँचे। गुणसेन सूरि उस वक्त ध्यान में निमग्न थे। मन्त्रीजी उनके सामने बैठकर ध्यान पूरा होने का इन्तजार करने लगे। थोड़ी देर में ध्यान समाप्तकर गुणसेनसूरि ने आँखें खोली तो सामने मन्त्रीजी को बैठा पाया। मन्त्रीजी ने नमनकर विज्ञप्ति की। गुरुदेव! राजा कई दिनों से दुष्ट व्यंतरी की पीडा से ग्रस्त है। हर एक उपाय आजमाकर देखा किन्तु सब विफल रहे। शांतिकर्म, होम, यज्ञ, दान, तन्त्र, मन्त्र, औषधि आदि किसी भी कार्य का कोई अंजाम नहीं आया। नागरिक एवं दरबारी सभी हताश हो गये हैं। अब आप ही कोई रास्ता निकालीए वरना राजा की जान खतरे में पड़ जायगी। यदि आप इस चिन्ता से राजा को मुक्त करेंगे तो जैनशासन की जय-जयकार चारों ओर होगी क्योंकि ऐसे दुस्साध्य को भी साधित करने से शासन की ज्यादा प्रशंसा होगी। राजा भी जैन धर्म में दृढ़ श्रद्धावान बन जायगा जिससे जैन शासन की उन्नति में सहायक बनेगा। गुणसेनसूरि ने विचारकर कहा कि आप कल सुबह सूर्योदय के समय आना, तब तक मैं इसके उपाय को निकालने की पूरी-पूरी कोशिश करूंगा। मन्त्रीजी गुणसेनसूरि को वन्दनकर राजा के स्वस्थ होने की आशा में वहाँ से निकलकर सीधे राजमहल में चले आये। वहाँ राजा की परिस्थिति पहले से भी और ज्यादा खराब हो गयी थी। खाना-पीना-बोलना सब बन्द हो गया था। केवल बेहोश होकर पड़े थे। राणिओं के शोक की कोई सीमा नहीं थी। अब तो किसी भी प्रकार का प्रयत्न भी छोडकर पराजित के समान सब बैठे हुए थे। मन्त्रीजी ने आकर सबको सान्त्वना देकर गुणसेनसूरि से हुई वार्तालाप की हकीकत सबके आगे कहीं। राणी एवं लोगो के हृदय में एक आशा की किरण प्रकट हुई कि जरूर आचार्य श्री कोई न कोई उपाय निकालेंगे। आचार्य गुणसेनसूरि रात को प्रतिक्रमण के बाद ध्यान में बैठकर भक्तामर स्तव का ध्यान करने लगे। भक्तामर के चित्रं किमत्र... इस पंदरहवें श्लोक के विषय में लयलीन हो गये। देवी ने प्रकट होकर कहा मल्ल ऋषि के चरणों के प्रक्षालन किये हुए पानी से सिञ्चन करने पर राजा का व्यन्तरी दोष नष्ट हो जायगा। इस प्रकार कहकर देवी तिरोभूत हुई। प्रातःकाल ठीक समय पर मन्त्रीजी आचार्यश्री को वन्दन करने आये। वन्दन कर

विनयपूर्वक उनके सामने बैठे। आचार्य श्री ने कहा - पूरी रात नित्य कायोत्सर्ग रहनेवाले, शीत एवं उष्ण काल में उपसर्गों को जीतनेवाले, जिनका मन अचलित है किसी भी परिस्थिति में, महामहिमावाले, मल्ल नामक मुनीन्द्र को गुजरात देश से लाकर उनके चरण प्रक्षालित जल से राजा पर सिञ्चन करने से दुष्ट व्यन्तरी दोष नष्ट हो जायगा। मन्त्री गुणसेनसूरि को वन्दनकर उनकी कृतज्ञता मानता हुआ वापस राजमहल में आया। मुख्य प्रधानों को साथ लेकर पवनवेगी घोड़ों पर बैठकर शीघ्र गुजरात देश में पहुँचे। वहाँ जाकर उनके चरण कमलों में नमस्कारकर, प्रार्थनाकर और सारी परिस्थिति से अवगत कराकर आदरपूर्वक मल्लर्षि को अयोध्या ले आये। उनके चरण कमलों का प्रक्षालन किया हुआ अभिषेक राजा पर छाँटा। उस जल का प्रभाव असह्य जानकर दुष्ट व्यन्तरी अपनी जान हथेली में लेकर क्षणभर में रफूचक्कर हो गयी। राजा ऐसे उठकर बैठा मानो अभी-अभी गहरी नींद से उठा हो। राजा को संपूर्ण स्थिति की जान कराकर सामने बैठे हुए मल्लर्षि के दर्शन कराये। अत्यन भक्तिपूर्वक राजा ने मल्ल मुनीन्द्र की स्तुति की। मल्लर्षि ने योग्य समय जानकर जीव रक्षा का उपदेश दिया। दीर्घ आयु, रूप, आरोग्य, प्रशंसा ये सब जीवदया का ही फल हैं। उपदेश सुनकर, सज्जन राजा ने जीवदया का स्वीकार किया एवं परम जैन श्रावक हुआ। मन्त्री आदि सभी अर्हद्धर्म में तत्पर हुए। सब मिलकर गुणसेन सूरि के पास वन्दनार्थ गये। गुणसेन सूरि ने भक्तामर स्तव की महिमा एवं देवी का आगमन आदि संपूर्ण वृत्तांत कहा। सब आनन्दित हुए एवं सबने भक्तामर पाठ का स्मरण किया।

प्रश्न : आदि धार्मिक की व्याख्या क्या?

उस उस संप्रदाय के प्रणेताओं के कथनानुसार आर्य आचरणाओं को करनेवाला। और वह मध्यस्थ होता है।

''स आदिधार्मिकश्चित्रसतत्तत्तन्त्रानुसारतः''

सांख्य दर्शन में राजसी-तामसी प्रकृतिवालों में और बौद्ध मत में भवितव्यता की परिपक्वता न हो वहां तक आदि धार्मिकता नहीं होती। ऐसा विधान किया है।

षोडशम श्लोक : निर्धूम...

भावार्थ : हे नाथ! (द्वेष रूपी) धूएँ से रहित (और कामदशा रूपी) लौ से रहित तथा स्नेह रूपी तेल को भरने के त्यागी ऐसे आप इस समग्र तीन जगत को प्रकट करते हो (तथा) पर्वत को कंपानेवाले ऐसे वायु को कभी भी अगम्य, ऐसे जगत मे प्रकाश करनेवाले आप अलौकिक दीपरूप हो।

सप्तदशम श्लोक : नास्तं कदाचिदुपयासि...

भावार्थ : आप किसी भी वक्त अस्त को प्राप्त करते नहीं, राहु से अगम्य (तथा) तत्काल एक साथ तीनों जगत को प्रकट करते हो। तथा मेघ के मध्य भाग से नही रोके हुए महाप्रभाववाले, (उससे) हे मुनीश्वर जगत में सूर्य से (भी) अधिक महिमावाले आप हो।

षोडशम एवं सप्तदशम श्लोक पर प्राभाविक कथा :

अनेकानेक सङ्ग्राम में विजयी, निर्धनता के अधीन ऐसे दीन जनों के लिए कुबेर तुल्य, सत्य प्रतिज्ञावान, गुणीयल, गुणपक्षपाती, परम श्रावक ऐसे सङ्गर नामक राजा का शासन पूरे सङ्गरपुर में प्रवर्तित था। वह धर्मदेवसूरि नामक आचार्य को अपना गुरु मानता था। उनके प्रताप से ही सङ्गर राजा को जैन धर्म की प्राप्ति हुई थी। सब बातों से परिपूर्ण होने पर भी उसके जीवन में एक चीज की कमी थी। उसके पश्चात् राज्य की धुरा संभालने वाले पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई थी। सङ्गर राजा दृढ़ जैन धर्मी था, इसलिए अपने कर्मों का ही यह फल है इस प्रकार विचारकर चिन्ता रहित हो जाता। कई वर्ष बीत गये। अचानक एक दिन रानी गर्भवती बनी। हर तरह से रानी का ख्याल रखा जाता। उसके उत्पन्न हुए दोहद की पूर्ति राजा स्वयं करवाता। योग्य समय पर पुत्र प्रसव हुआ। पूरे नगर में आनन्द का वातावरण छा गया। घर-घर में मिठाइयाँ बाँटी जाने लगी। घर एवं रास्ते फूलों की मालाओं से सजाये गये। राजा ने जिनमंदिर में अष्टाह्निका महोत्सव कराया। बन्दीजनों को रिहा किया गया। कर माफ किये गये। महामहोत्सवपूर्वक राजा ने उस जन्मे राजकुमार का 'केलिप्रिय' इस प्रकार नाम रखा। पांच धाव माताओं से लालन-पालन कराता केलिप्रिय दूज के चाँद के समान बढ़ने लगा। राजा की एकमात्र सन्तान होने से बड़े नाजों में पलने लगा। उसकी छोटी से छोटी इच्छा भी तत्काल पूर्ण होती।

जब आठ वर्ष का हुआ तब गुरुकुल में कलाओं को ग्रहण करने के लिए भेजा गया। बहोंतर कलाओं में पारङ्गत हुआ। उसके जीवन में उच्छृंखलता, हठ आदि ऐसे कई दुर्गुण घूस गये थे। नास्तिक मत का अनुयायी बना। खा-पीकर मौज करना यह

उसके जीवन का ध्येय बन गया। वह आत्मा के अस्तित्व को नहीं स्वीकारता। राजा सङ्गर उसे कई बार समझाते किन्तु विपरीत शिक्षित घोड़े की लगाम खिंचने के समान और अधिक उच्छृंखल बनता गया। तर्क शक्ति से सबको पराजितकर यह सिद्ध कर देता कि आत्मा नाम की कोई चीज नहीं है। उसके संपर्क में आकर कई आस्तिक भी मिटकर नास्तिक बन गये। पिता सङ्गर उसे सुधारने की तरकीब सोचते रहते। वे सोचते कि मेरे घर जन्मे पुत्र का हित किस प्रकार हो। उन्हें कोई उपाय नजर नहीं आ रहा था। अनेक विद्वान लोगों से उसका मिलन कराया किन्तु कुमार ने अपने उन्मार्ग को नहीं छोड़ा। जैसे-जैसे उम्र बितती गयी वैसे-वैसे कुमार अत्यन्त विलासी बनता गया। भक्ष्य-अभक्ष्य, पेय-अपेय, गम्य-अगम्य का विचार किये बिना जो जैसा हाथ लगा उसका भोगोपभोग निस्संकोच करने लगा। अब तो उसके व्यसन की सीमा का उल्लंघन हो चूका था। राजमहल में रात-दिन सुन्दरी एवं सुरापान में व्यतीत होने लगे। घूंघरूओं की रणकार से राजभवन गूंज उठता था। उसको युवराज पद देने का राजा सङ्गर सोच रहे थे। किन्तु वे इस दुविधा में थे कि इस नास्तिक को युवराज पद कैसे दूँ? इसको युवराज पद देना अर्थात् जानबुझकर मुसीबत गले लगाना। बैल से कहना कि 'आ बैले मुझे सींग मार'। इसके हाथ में सत्ता आते ही 'अन्धेरी नगरी चौपट राजा' जैसा खेल हो जायगा। एक गन्दी मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है। राजा इस विचारों में थे कि अचानक दूत ने आकर प्रणाम किया और कहा 'महाराज सङ्गर की जय हो।' कल सुबह जैनाचार्य श्री धर्मदेव सूरि इस सङ्गरपुर में पदार्पण करेंगे। सन्देश सुनते ही अपने गले में रहा हुआ बहुमूल्य रत्नहार निकालकर दूत को दे दिया और आदेश दिया कि आचार्य श्री के स्वागत की तैयारी ठाठ-बाठ से की जाय। हम स्वयं उन्हें लेने के लिए जायेंगे। धूमधाम पूर्वक स्वागत की तैयारी शुरू हुई। राजा सङ्गर बहुत खुश थे। आज बरसों बाद फिर से उपकारी भगवन्त के दर्शन होंगे। उनको देखे एक जमाना बित गया है। अपना दुःखड़ा भी आचार्य श्री के आगे प्रकट करूंगा। वे ज्ञानी हैं। वे जरूर केलिप्रिय को सन्मार्ग पर ले आयेंगे। इन विचारों में निद्राधीन हो गये। सुबह होते ही दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर, हाथी पर सवार होकर, राजा नगर द्वार पर पहुँचे। आचार्य श्री के मुख दर्शन के लिए अत्यन्त उत्सुक थे। धर्मदेव सूरि के दर्शन होते ही हाथी पर से नीचे उतरकर उनके पास पहुँचे। हर्षाश्रु बहने लगे। अनेक वर्षों की वियोग रूपी अग्नि का आज शमन हुआ था। विधिपूर्वक वन्दन किया। उल्लासपूर्वक नगर प्रवेश कराया। उद्यान में जाकर गुरुदेव के प्रवचन के पश्चात् सब

लोग बिखर गये। अब केवल राजा और आचार्य भगवन्त दोनों ही बैठे हुए थे। सभी मुनि भी अपनी-अपनी आवश्यक क्रियाओं में रत हो गये थे।

आचार्य भगवन्त ने पूछा क्यों राजन्! नगर में धर्माराधना तो सम्यक् प्रकार से चल रही है ना? राजा ने जवाब दिया - वैसे तो सब कुशल क्षेम है किन्तु मैं एक उलझन में उलझ गया हूँ। इस उलझन ने मेरा जीना हराम कर रखा है। आचार्य श्री ने पूछा - कैसी उलझन? राजा ने केलिप्रिय के बारे में पूरी हकीकत कही। इस पुत्र ने मेरी नाक में दम कर रखा है। मुझे यह चिन्ता सता रही है कि भविष्य में यह राजा बनेगा तो धर्म का ध्वंस कर देगा। सारी प्रजा को उल्टे मार्ग पर दोरेगा। मंदिर एवं मुनिगण की सुरक्षा मेरे इस नगर में शङ्कास्पद हो जायगी। अब तो केवल आप ही कुछ कर सकते हैं। गुरुदेव ने राजा को दिलासा देते हुए कहा ठीक है मेरे पास केलिप्रिय को भेजना। मैं उसे समझाने का हर एक प्रयत्न करुंगा। आशा की उमंग के साथ आचार्य श्री को प्रणामकर राजा ने अलविदा ली। राजमहल में पहुँचकर केलिप्रिय को समझाकर गुरु भगवन्त के पासे जाने का आग्रह किया। वह तो उसके लिए तैयार ही था। उसे विश्वास था कि मैं वाद-विवाद में सबको पराजित कर सकता हूँ। उसे अपने नास्तिक मत का प्रचार करना था। तभी का तभी सीधे उद्यान में आचार्य श्री के पास पहुँचा। दोनों आमने-सामने बैठे। वार्तालाप शुरु हुआ। आचार्य भगवन्त ने उसे समझाया कि मांसाहार, महारम्भ, महापरिग्रह, पञ्चेन्द्रियवध, मदिरापान, गुरु की पत्नी के प्रति गमन ये महापातक हैं और इनसे निश्चय से जीव नरकायु बान्धकर परलोक में अत्यन्त दुःखी होता है। जो व्यक्ति दुष्प्राप्य ऐसे मनुष्य जन्म को प्राप्त कर उसे हार जाता है वह मूर्खशिरोमणि चिन्तामणि रत्न जो अत्यन्त मुश्कील से मिला हुआ है उसे प्रमाद से समुद्र में गिरा देता है। इसलिए धर्माराधनकर जीव को शाश्वत सुख का भोक्ता बनाओ। इसके लिए सत्संग की आवश्यकता है। सत्संग में रत व्यक्ति कभी मार्गच्युत नहीं होता। उपदेश सुनते ही केलिप्रिय भूताविष्ट के समान प्रलाप करने लगा। बन्द करो यह ढ़कोसला। धर्म नाम की कोई चीज नहीं है। तुम लोग इतना दुःख व्यर्थ में क्यों सहते हो और बिचारे भोलेभाले जीवों के मन में अपनी बात ठूसकर उन्हें भी व्यर्थ में दुःखी करते हो। नंगे पैर चलना, दिन भर भूखा रहना, गन्दे कपडे पहनना इत्यादि इन झूठी क्रियाओं से कोई सुख मिलने वाला नहीं। अगर जिन्दगी मिली है तो मौज मनाओ। आगे परलोक नाम की कोई चीज नहीं है। मैं यह सिद्ध कर सकता हूँ कि आगे जन्म-मरण का चक्कर नहीं है। धर्म नहीं है कारण कि उसका साधक जीव का

अभाव होने से। जिस प्रकार बादल का अभाव होने पर पर्वत के नदी की बाढ का अभाव होता है वैसे जीवाभाव है। यह देह पाँच महाभूतों से उत्पन्न हुई है और उसमें ही विलीन हो जायगी। इस देह को छोड़कर दूसरा जीव नामक कोई तत्त्व नहीं। जीव का अभाव होने पर स्वर्ग और नरक का अभाव हो जाता है। क्योंकि वहाँ जानेवाला, सुख-दुःख भोगनेवाला कोई नहीं होता। जैसे गांव का अभाव होने पर सीमा का अभाव हो जाता है। इसलिए महाराज ये स्वर्ग और नरक इस धरती पर ही हैं। इस पंचभूत से बने पुतले को दुःख देना वह नरक एवं यथेष्ट सुखोपभोग करना ही स्वर्ग है। मेरी मानों उतार दो यह धर्म का चोला और चलो मेरे साथ राजमहल में आनन्द लुटने। इतने वर्ष कष्ट में व्यर्थ ही गवां दिये। चलो मेरे साथ स्वर्ग के दर्शन करा देता हूँ। बिचारे इन दूसरे अबुध लोगों को भी बली के बकरे बना रहें हो। आचार्य श्री ने सोचा यह वाचाल चार्वाक मत के ग्रन्थों का अध्ययन किया हुआ है। अतः इसका दिमाग विपरीत दिशा में चलता है। यह अत्यन्त दुर्बोध है। इस प्रकार विचारकर गुरुदेव ने मौन का आलम्बन लिया। केलिप्रिय जो जी में आया वह बककर वहाँ से चल दिया। राजमहल की ओर जाते हुए रास्ते में वह सोचने लगा - मुझे धर्म का मार्ग बताने आया था। ऐसी पट्टी पढ़ायी अब बिचारा याद करेगा मुझे। कैसे बोलती बन्द कर दी मैंने उसकी। इस प्रकार मन के लड्डु खाता राजमहल में पहुँचकर सीधा अपने कमरे में चला गया। सेवकों ने राजा से सारी सत्य हकीकत कही। राजा अति दुःखी हुआ। राजमहल से निकलकर सीधा उद्यान में गुरुदेव के पास पहुँचा। अश्रुभीनी आँखों से उनके चरणों में गिरकर अपने बेटे के किये हुए अपराध की बार-बार क्षमायाचना मांगी। गुरुदेव ने उसे उठाकर कहा - क्षमा मांगने की कोई जरूरत नहीं। हमारे जीवन में ऐसी घड़ियाँ कितनी ही बार आती हैं। इसमें ही तो हमारी परीक्षा है। साधु को भला मान-अपमान से क्या वास्ता? हमारे लिए उपकारी और अपकारी दोनों समान हैं। दुःखी मत हो और व्यर्थ की चिन्ता मत करो। मैं और कोई उपाय निकालूंगा। राजा प्रणामकर दुःखी हृदय से वापस लौटा। आवश्यक क्रियाएँ पूर्णकर आचार्य श्री केलिप्रिय को सही रास्ते पर लाने के उपाय सोचने लगे। उन्होंने सोचा लातों के भूत बातों से नहीं मानते। कोई ऐसा करूँ जिससे इसकी बुद्धि शीघ्र ही ठीक रास्ते पर आ जाय। इस प्रकार विचारकर भक्तामर के सोलहवें एवं सतरहवें श्लोक के ध्यान में निमग्न हुए। चक्रेश्वरी देवी प्रसन्न होकर प्रकट हुई। पूछा फरमाइए आचार्यदेव क्या आज्ञा है? आचार्य श्री ने कहा - मैं केलिप्रिय को प्रतिबोधित करना चाहता हूँ। हमारे साथ

केलिप्रिय नरक के दर्शन कर रहा हो कुछ ऐसा करो। देवी आचार्य भगवन्त एवं केलिप्रिय राजकुमार को नरक में ले गयी। केलिप्रिय ने साक्षात् नारकी के दर्शन किये। वहाँ पर कहने के लिए अशक्य ऐसी बहुत प्रकार की शीत-उष्ण आदि वेदनाओं को नारकी जीव सह रहे थे। क्षेत्रवेदना, पारस्परिक वेदना, परमाधार्मिक देवों द्वारा दत्त वेदना की कोई सीमा नहीं थी। छेदन-भेदन-ताडन-सीसुपान-अग्निपुतली से आलिङ्गन आदि देखकर केलिप्रिय पानी-पानी हो गया। परमाधार्मिक, नारकी जीवों को पकड़कर जोर से चिल्ला रहे थे। अरे दुष्ट! कहाँ भागते हो, पाप करते समय तो यह विचार नहीं किया कि इसका परिणाम क्या आयगा, बड़े मजे से हीन प्रवृत्तियाँ की थी। अब उसके फल भोगने की बारी आयी तो भाग रहे हो कहकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। वापस वे टुकड़े पारे के समान क्षणभर में सन्ध गये। फिर से उस पर गदे का प्रहारकर उसको चकनाचूर कर दिया। इस प्रकार वे कई प्रकार से जीवों को उनके कर्मो के फल की याद दिलाकर पीड़ा दे रहे थे। बाघ को देखकर जिस प्रकार बकरी काम्पती है उसी प्रकार केलिप्रिय थर-थर काँप रहा था। देवी वापस उन्हें सङ्गरपुर में ले आयी। आचार्यदेव को प्रणामकर देवी स्वस्थान पर चली गयी। आचार्य श्री ने केलिप्रिय से पूछा-क्या अब तो परलोक का विश्वास हुआ? केलिप्रिय तुरन्त बोला बस गुरुदेव पापों का फल मैंने प्रत्यक्ष इन आँखों से देख लिया। अब किसी भी प्रकार की कोई शङ्का नहीं रही। पुण्य-पाप के फल वाच्य नहीं किन्तु अनुभवजन्य हैं। अपने पूर्वकृत दुष्कृतों का पश्चात्ताप करने लगा। गुरु से हुई अविनय की भी क्षमायाचना मांगी। गुरुदेव से धर्म के बारे में पूछा। कोरे घड़े के समान राजकुमार का हृदय आचार्य श्री ने तत्त्व रूपी पानी से भर दिया। नितप्रति धर्मश्रवण करता। गुरु के समीप में सम्यक्त्व मूल श्रावक व्रत अंगीकार किये। भक्तामर स्तव की महिमा जानकर उसका नित्य स्मरण करता। राजा भी अति प्रसन्न हुआ अपने पुत्र के जीवन परिवर्तन से। अन्त में लम्बे काल तक केलिप्रिय धर्माराधनाकर एवं नीतिपूर्वक राज्य सुख का उपभोग कर स्वर्गवासी हुआ।

प्रश्न : सात स्वर कौन से?

मयूर का शब्द षड्ज, गाय का शब्द ऋषभ, बकरे का शब्द गांधार, क्रोंच पक्षी का मध्यम, वसंत ऋतु में कोयल का शब्द पंचम, अश्वों का शब्द धैवत और हस्ति का शब्द निषाद।

अष्टादशम श्लोक : नित्योदयं दलित...

भावार्थ : निरन्तर उदय होते मोह रुपी अन्धकार को नाश करनेवाला, राहु के मुख को अगम्य, मेघ को भी अगम्य, अत्यन्त कान्तिवाला तथा समग्र जगत को प्रकाशित करता अपूर्व चन्द्रबिम्ब समान आपका मुख कमल शोभता है।

अष्टादशम श्लोक पर प्राभाविक कथा :

अनेक जिनालयों से सुशोभित, होम-हवन-पशु बली का जहां प्रतिबन्ध है, जनसमुदाय दयायुक्त हृदयवान है, पशुओं को भी छानकर जल पीलाया जाता है, ऐसी पाटण की पवित्र धर्मधरा। यहाँ परम अर्हत् भक्त कुमारपाल नामक राजा का शासन था। उसका अम्बड नामक सेनापति था। अम्बड भी जैन धर्म परायण एवं श्री हेमचन्द्राचार्य का परम भक्त था। अम्बड की अध्यक्षता से कोई भी सीमावर्ती राजा पाटण पर हमला करने के विचार से भी कांपता था। उसके संचालन में राजा कुमारपाल ने कई राजाओं को परास्तकर अपने दास बनाये थे। अम्बड सेनापति की हाजिरी से राजा कुमारपाल भी बिलकुल निश्चिन्त था। कुमारपाल ने अम्बड पर अति खुश होकर उसे लाट देश का अधिपति बना दिया। अब अम्बड लाट देश के संचालन में व्यस्त था। जब भी कार्य के लिए भरुच नगर से दूर जाता तब मौका देखकर उस नगर के समीप के वन में रहे हुए भिल्ल उस नगर के आजू-बाजू के गांवों पर हमलाकर उनको लूंटकर चले जाते। गांव के अग्रिम लोग जाकर राजा को फरियाद करते किन्तु परिणाम हमेशा की तरह शून्य में आता। अब की बार कुमारपाल राजा की सेवा में पाटण गया हुआ था अम्बड। भिल्लपति को समाचार मिलते ही भरुच नगर पर भी धावा बोल दिया। अनगिनत धन-धान्य को लेकर वापस वन में लौट गये। अम्बड़ भरुच से वापस लौटा। उसे सारी बात की जानकारी दी गयी। विचार-विमर्श के लिए मन्त्री को बुलाया। अम्बड़ ने मन्त्रीजी से पूछा आये दिन भिल्ल लोग गांव-शहरों पर हमलाकर जान-माल को नुकशान पहुँचाते हैं। इसका कोई इलाज करना पड़ेगा नहीं तो प्रजा का राजा पर से विश्वास उठ जायगा। मैं तो अभी इस लाट देश में नया आया हूँ किन्तु आपको तो इन सब का अनुभव है ही कि भिल्ल की बस्ती कहाँ आयी और उन पर कैसे आक्रमण करना? मन्त्रीजी बोले - जी महाराजजी मुझे सब ज्ञात है किन्तु उन भिल्लों को जितना अत्यन्त दुष्कर है। इससे पहले भी कई राजाओं ने इन पर चढ़ाई की लेकीन सब राजाओं को मुंह की खानी पडी। पहली बात तो ये लोग अति गहन जंगल में निवास करते हैं। दूसरी इनके पास पहले से ही समाचार पहुँच जाते हैं कि राजा

आक्रमण करने आ रहा है इससे वे लोग सब ओर बिखर जाते हैं। इनके छुपने के स्थान भी गुह्य हैं। इसलिए एक साथ चारों ओर से राजा की सेना पर टूट पड़ते हैं। इससे राजा की सेना किंकर्त्तव्यमूढ बनकर तितर-बितर हो जाती है। और अन्तिम बात जो इनकी खासियत है वह है इनकी क्रूरता। विवेक शून्य होने के कारण वे इतने क्रूर हैं कि उनका प्रहार कभी खाली नहीं जाता। अन्धाधुन्ध सेना पर बाणों की वर्षा कर देते हैं। उनके विजय में ये क्रूरता ही एहमियत रखती है। इसलिए इनको जितना कोई बच्चों का खेल नहीं। बडे-बडे दिग्गजों ने भी इनके सामने घुटने टेक दिये। अतः इन पर आक्रमण करने की व्यूह रचना को अपने मन से तिलांजली दे दीजिए। राजा ने कहा - यह कैसे हो सकता है? अगर इनके अत्याचार को यहीं नहीं रोका गया तो एक दिन पूरे देश में इन लोगों का साम्राज्य फैल जायगा। सांप को फन उठाने से पहले ही कुचल देना चाहिए। इसके निराकरण के लिए मुझे ही कुछ सोचना पडेगा। अच्छा मन्त्रीजी आप जा सकते हैं। अवसर पर आपको फिर बुलावा भेजूंगा। मन्त्रीजी प्रणामकर चले गये। अम्बड़ ने अड़ोस-पड़ोस के राजा की सहायता से मजबूत सैन्य बल इकट्ठा किया। नये एवं आधुनिक औजार तैयार कराये। जब चारों प्रकार की सेना अत्यन्त सशक्त बन गयी तब युद्ध का बिगुल बजाया। भिल्लों के हर एक आक्रमण का सामने करने के लिए सज्ज थे। इतनी विशाल सेना के साथ अम्बड़ राजा ने युद्ध के लिए प्रयाण किया। मार्ग का उल्लंघन करते पल्लीवन के समीप आये। सबको सूचनाएँ दी गयी कि वे सब सतर्क रहें। अब हम इस भयंकर अटवी में प्रवेश करने जा रहे हैं। भिल्ल हम पर कभी भी और कहीं से भी आक्रमण कर सकते हैं। इसलिए सावधानी एवं हिम्मतपूर्वक काम लेना। हिदायत देकर सेना ने गहरे वन में प्रवेश किया। वहाँ मानव मात्र का नाम भी नहीं था। भयंकर सिंह, हाथी, जैसे जंगली जानवरों की आवाजें सीना कम्पा देती थीं। ज्यों ज्यों आगे बढ़ने लगे त्यों त्यों वन और गहरा होता गया और सूर्य का प्रकाश गहन वृक्षों के आवरण से मन्द-मन्द होता गया। किसी को कुछ पता नहीं चल रहा था कि हम किस दिशा में चल रहे हैं? क्या यह रास्ता भिल्लों की बस्ती की ओर जाता है या नहीं यह भी किसी को खयाल नहीं था। राजा ने सोचा अगर इस समय भिल्ल हम पर आक्रमण करें तो निश्चय से विजय भिल्लों की ही है। कारण कि सभी सैनिक असमंजस में पड़कर शिथिल बन गये हैं। युद्ध के लिए कोई भी सिपाही सज्ज नहीं है। सैन्य सहित राजा अब उससे भी विकट अटवी में पहुँच गया। चारों ओर अमावस्या की रात्री के समान घोर अन्धेरा ही अन्धेरा दिखायी दे

रहा था। आगे जाने का रास्ता भी दिखायी देना बिलकुल बन्द हो गया था। सभी सैनिक भय के मारे पसीने से लथपथ हो गये थे। अब सबने सोचा मौत निश्चित है। इस डरावने जंगल में या तो सिंह, अजगर हमें खा जायेंगे या अभी हम पर क्रूर भिल्लपल्ली तुट पडेंगी। राजा भी चिन्ताग्रस्त हो गया। उसे कोई उपाय नजर नहीं आ रहा था। अन्त समय समझकर अम्बड़ भक्तामर के अठारहवें श्लोक का भावपूर्वक एकतान होकर स्मरण करने लगा। अचानक उस विरान जंगल में चारों ओर प्रकाश फैल गया। चक्रेश्वरी देवी प्रकट हुई। उसने कहा अम्बड़! मैं तेरी भक्ति से प्रसन्न होकर तुम्हें यह चन्द्रप्रभ का बिम्ब देती हूँ। इसका प्रभाव भी अलौकिक है। यह बिम्ब विष के आवेग को नष्ट करता है, सभी विघ्नों से विजय दिलाता है और भी इसके कई उपयोग हैं। यह बिम्ब तो मेरी तरफ से स्वेच्छापूर्वक भेंट किया गया है। अब तुम भी अपनी जबान से कुछ मांगो। अम्बड़ ने कहा देवाधिदेव की कृपा से मुझे किसी भी बात की कमी नहीं है। सेनानायक से राज्यनायक बन गया इससे बढकर और क्या मांगू। आप मेरी सहायता के लिए पधारी यही काफी है। अम्बड़! देवी का दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता। इसलिए तुम्हें कुछ न कुछ तो मांगना ही पडेगा। मैं तुम्हारी भक्ति के वश से बन्धी हुई हूँ। इसलिए भले ही तुम निःस्पृह हो किन्तु कुछ तो अवश्य ही मांगना पडेगा। अम्बड़ नहीं चाहते हुए भी देवी से कहा मुझे नागरवेल के पान बहुत प्रिय हैं किन्तु लाट देश नागरवेल पान की उत्पत्ति के अनुकूल नहीं है। इसलिए ऐसा करो कि हर ऋतु में यहां नागरवेल पान उपलब्ध हों। देवी ने उसकी इच्छा पूर्णकर तिरोधान हुई। अब उस बिम्ब के प्रभाव से चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश फैल गया। अमावास्या की रात्री के समान अत्यन्त गहन अटवी में भी सूर्य के समान वह बिम्ब चमक रहा था। सेना अब उसके सहारे आगे बढने लगी। थोडी देर में भिल्लपल्ली के समीप के प्रदेश में पहुँचे। चारों ओर भिल्ल छुपे हुए प्रतीक्षा कर रहे थे कि राजा की सेना आते ही अन्धकार का लाभ उठाकर उन पर टूट पडेंगे। किन्तु वहाँ प्रकाश देखकर भिल्ल घबरा गये। इतनी विशाल सेना का खुले आम सामना करना उनके बस की बात नहीं थी। सब भिल्ल भागने लगे। अम्बड़ की नजर उन भागते भिल्लों पर पडते ही उन सबकों पकड़ने का हुकम दिया। सैनिकों ने पीछाकर उन सबको पकड़ लिया। अब भिल्ल के निवास स्थान पर आक्रमणकर उनके नायक कों पकड़कर बन्दी बना डाला। सबकों ले जाकर करागृह में डाल दिया। आसपास के गांवों की एवं भरुच नगर की प्रजा बहुत खुश हुई। उन्होंने कहा जो काम बड़े-बड़े राजा नहीं कर सके वह सत्ता पाते ही

महाराज अम्बड़ ने कर दिखलाया। प्रजा ने अब राहत की सांस ली। दिन सुख-शांति में व्यतीत हो रहे थे कि अचानक कुमारपाल राजा का सन्देश आया कि अधार्मिक, क्रूर ऐसा राजपितामह मल्लिकार्जुन नामक अजगर सिर उठा रहा है। उसका सिर हमेशा-हमेशा के लिए कुचल दो। आदेश पाते ही राजपितामह मल्लिकार्जुन को ठिकाने लगाने की तरकीब सोचने लगा। मल्लिकार्जुन राजा को युद्ध में जीतना नामुमकीन था। इसलिए चाल चलकर कपटपूर्वक मल्लिकार्जुन राजा की हत्या कर दी। राजा की हत्याकर उसके नगर से (१) विषहर मणि, (२) श्वेत हस्ती, (३) आठ सौ स्वर्णपात्र, (४) बत्तीस मोतियों से भरे मूढे, (५) शत स्वर्णकलश, (६) रत्नकम्बल (७) शृङ्गार कोटि साडी एवं (८) मल्लिकार्जुन नृप का शिर ये आठ वस्तुएँ श्री कुमारपाल महाराज के आगे भेंट में रखी। कुमारपाल ने अम्बड़ को राजपितामह के बिरुद से सम्मानित किया। अम्बड़ वापस अपने भरुच नगर में लौटा। एक दिन उसके पूरे शरीर में विष फैल गया। देवी द्वारा प्रदत्त बिम्ब के प्रभाव से जहर उतर गया। प्रतिदिन पूजा-पाठ एवं भक्तामर का स्मरण करता। एक दिन प्रातःकाल अपनी माँ के चरण छूने उनके शयन कक्ष में गया। कमरे में जाकर चरण स्पर्श किये। हर रोज तो माँ 'दीर्घायु भव' कहकर शीघ्र आशीर्वाद देती किन्तु आज उसके सामने तक नहीं देखा। माँ के इस विचित्र स्वभाव से उसे आश्चर्य हुआ। अम्बड़ ने पूछा - क्यों माँ आज मुझसे कोई भूल हुई? क्या तुम खुश नहीं हो? माँ ने जवाब दिया - किस बात से खुश होऊँ? मैं देख रही हूँ कि जब से मल्लिकार्जुन की छलपूर्वक हत्या की है तब से गर्वित होकर घूम रहा है। भरुच नगर में सकुनिकादि विहार का उद्धार किया है जो मेरा मन हर्षित होगा? मेरा मन तो उस दिन आशीर्वाद देने के लिए लालायित होगा जिस दिन भरुच नगर के जिनालयों का जीर्णोद्धार करायगा। अम्बड़ भी जिनेश्वर भगवन्त का भक्त था। माता के उपकार सदैव हृदय में धारण करके रखता था। माँ के द्वारा जरा सा इशारा करते ही उसने कहा माताजी! मैं अब उसी दिन चैन की साँस लूँगा जिस दिन जीर्ण हुए जिनमंदिर एवं दुर्गत श्रावकों का उद्धार करूँगा। मेरी रग-रग में भी तुम्हारा ही खून दौड़ रहा है। माँ! जितनी जिनेश्वर देव पर तुम्हारी प्रीति है उतनी मेरी भी है। इस पुत्र को आशीर्वाद दो कि वह शासन के कार्य में सहायक बन सके। माँ का आशीर्वाद प्राप्तकर सीधा राजसभा में आया। जीर्णोद्धार का प्रस्ताव रखा और शीघ्रातिशीघ्र काम प्रारंभ किया गया। हर एक जिनमंदिरों का पुराना ढांचा नये रूप में उभरने लगा। सकुनिकविहार आदि विशाल मंदिरों की अजोड़ शिल्पिओं

की देखरेख में कारीगिरी चलने लगी। थोडे समय में काम पूर्ण हो गया। श्री हेमचन्द्राचार्य की सान्निध्यता में महामहोत्सवपूर्वक प्रतिष्ठा करायी गयी। उसके दान उत्कर्ष को देखकर स्वयं हेमचन्द्राचार्य ने अम्बड़ की प्रशंसा की। जिस देश में ताम्बूल मिलना अति कठिन था उस देश में भी ताम्बूल पुष्कल (बहुत) प्रमाण में प्राप्त होने लगा। माँ ने आशीर्वाद देते हुए अम्बड़ से कहा - आज मेरे हृदय में खुशी समा नहीं रही है। तुम जैसे पुत्र को प्राप्तकर आज मेरा यह मस्तक गर्व से ऊँचा हो गया है। उसकी आँखों से हर्षाश्रु बहने लगे। माँ को खुश देखकर अम्बड़ भी अत्यन्त प्रसन्न हुआ। लम्बे काल तक दिव्य सुखों का उपभोगकर सद्गति को भजनेवाला हुआ।

प्रश्न : मूल में घाव समान कौन?

सेवा सुखानां व्यसनं धनानां, याञ्चा गुणानां कुनृपः प्रजानाम्।
प्रनष्ट शीलश्च सुतः कुलानां, मूलावपाती कठिनः कुठारः ॥

सुखों के मूल में सेवा (नौकरी), धन के मूल में व्यसन, गुणों के मूल में याचना, प्रजा के मूल में दुष्ट नृप, और कुल के मूल में आचार भ्रष्ट पुत्र तीक्ष्ण कुठार के घाव समान है।

प्रश्न : देवताई वर्ष कैसे?

श्री हंससागर सूरिजीने लिखा है अपने एक वर्ष का देवताई १ दिन, तीस वर्ष का एक महिना, ३६० वर्ष का एक वर्ष। (श्राद्ध प्र. सूत्र भाषांतर, पृ. ४३०)

प्रश्न : इस समय में जिन प्रतिमा से ज्ञान का महत्त्व विशेष प्रतिपादित किसीने किया है?

उपदेश प्रासाद स्तंभ १५ में व्याख्यान २१५ में लिखा है, "जिन प्रतिमा बनवाने से भी सिद्धांतों को लिखवाने में, उसका श्रवण करने में विशेष अधिक पुण्य है। क्योंकि ज्ञान के बिना प्रतिमा का महत्त्व किस प्रकार समझा जा सके? ऐसा लिखा है।

एकोनविंशतितम श्लोक : किं शर्वरीषु...

भावार्थ : हे नाथ! जो पाप रूपी अन्धकार आपके मुख रूपी चन्द्र के द्वारा दूर हो जाता हो, तो रात्री के विषय चन्द्र के द्वारा क्या? अथवा दिन में सूर्य के द्वारा क्या कार्य है? जिस प्रकार दुनियाँ में पक्व चावल से लहराते हुए वन (खेत) हो तो जल के भार से झुके हुए मेघ के द्वारा क्या कार्य है ?

एकोनविंशतितम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा :

कला, उपवन, धन, धान्य, धर्म, लक्ष्मी आदि से विशाल ऐसी विशाला नामक नगरी थी। वहाँ अत्यन्त सरल, नीतिमान, दयार्द्र, उपकारी ऐसा लक्ष्मण नामक वणिक् रहता था। एक दिन उसने लोगों के मुख से आचार्य श्री रामचन्द्र सूरि की प्रशंसा सुनी। उसने अपने मित्र से पूछा ये रामचन्द्र सूरि कौन हैं? जिनकी चारों ओर लोग वाह-वाह कर रहे हैं। मित्र ने कहा - यार सुना है ये जैनों के बहुत बड़े साधु हैं। उनके जैसा ज्ञानी वर्तमान में शायद ही कोई होगा। अत्यन्त सरल स्वभावी। इनके तप-त्याग की तो बात ही कुछ निराली है। तप के प्रभाव से शरीर की कान्ति भी देदीप्यमान है। रातभर कायोत्सर्ग में खड़े रहते हैं। इनकी वाणी के प्रभाव से पापी भी अपने पापाचरण को बन्ध कर देते हैं। कल उनका इस नगरी में प्रवेश होने जा रहा है। इसी उपलक्ष में यह नगरी सजायी जा रही है और उनका नाम चारों ओर सुनायी दे रहा है। लक्ष्मण ने कहा - अच्छा ऐसी बात है तो कल उनकी वाणी का रसास्वाद मैं भी जरूर करूँगा। सुबह होते ही आचार्य श्री ने नगर प्रवेश किया। शोभायात्रा लक्ष्मण के घर के सामने से निकली। वह भी उस यात्रा के साथ जुड़ गया। शोभायात्रा जिनमंदिर की ओर होकर नगरी के बाहर के उद्यान में पहुँची। वहाँ श्री रामचन्द्र सूरि ने संसार सागर से निस्तार करनेवाली, वैराग्य वासित देशना दी।

हे भव्य जीवों! अनन्त काल से इस संसार में नरक, निगोद, तिर्यंच, नीच कुल आदि में विविध प्रकार के दुःखों का अनुभव करते हुए इस जीव ने महा मुश्कील से मानव भव प्राप्त किया है। इन चौदह राजलोक के अत्यन्त सुखी ऐसे अनुत्तर वासी देव भी जिसकी झंखना करते हैं ऐसे मनुष्यत्व का हम लोग उपभोग कर रहे हैं। देवों को भी यह दुर्लभ है। क्योंकि इससे ही सर्वविरति एवं मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है। देव असंख्याता, नारकी असंख्याता, तिर्यंच अनन्त है किन्तु मानव केवल संख्याते हैं। उस मानव भव में भी क्षेत्र की अपेक्षा से आर्य-अनार्य एवं युगलिक आदि अनेक भेद पड़ते हैं। आर्य देश प्राप्त भी धर्मश्रवण और उससे भी

धर्मश्रद्धा एवं धर्माचरण एक से एक अत्यन्त दुर्लभ है। ऐसे अमूल्य मनुष्यत्व को प्राप्तकर भी जो प्रमाद करता है वह फिर से भव अन्ध कूप में पड़कर अत्यन्त दुःखी होता है। प्रमाद वश अन्त समय में धनुर्धर के धनुष्य के तुटने पर हाथ मलते हुए के समान पारावार शोक के अधीन हो जाते हैं। इसलिए हे भव्यों! इस मनुष्य भव को सार्थक बनाओ यही इसका उत्तम फल है।

तत्त्वमयी देशना सुनकर लक्ष्मण के दिल में भी आचार्य श्री के प्रति श्रद्धा रूपी झरना बहने लगा। सदा उनके समीप में शहद सम मीठी वाणी का आस्वादन करने लगा। सरलता तो उसके जीवन में पहले से ही ठूस-ठूसकर भरी हुई थी। आचार्य श्री के परिचय से सम्यक्त्व का भी उसके जीवन में प्रकटीकरण हो गया। खाली समय में आचार्य श्री के समीप अकेला ही जाकर धर्मचर्चा करता। गुरुदेव उसकी अत्यन्त सरलता एवं नम्रता देखकर उसे धर्मयोग्य समझकर उसकी शङ्का का निवारण अत्यन्त सरल भाषा में करते थे। धीरे-धीरे वह दृढ़ श्रावक बन गया। आवश्यक सूत्र एवं भक्तामर स्तोत्र भी उसने अतिश्रद्धापूर्वक कण्ठस्थ कर लिये। अब नित्य आवश्यक क्रिया एवं भक्तामर स्तोत्र में लयलीन था। त्रिकाल भक्तामर पाठ का स्मरण करता। आचार्य देव वहाँ से विहार कर गये। आचार्य श्री के उपकार एवं गुणों का स्मरण करता हुआ वह धर्मशिरोमणि अनेक प्रकार के नये-नये अनुष्ठानों का आचरण करने लगा। गुरुदेव के विहार के पश्चात् भी उसकी दैनिक क्रियाओं में कोई स्खलना नहीं आयी। इस प्रकार दिन पलक झपकते ही मानो नजरों के सामने से ओझल हो रहे थे कि अचानक राजादेश से नगाडा बजा कि मालवेश महीधर राजा सीमावर्ती राजाओं को जीतने के लिए प्रयाण करने जा रहे हैं। लक्ष्मण को भी समाचार ज्ञात कराये गये कि उसे भी युद्ध के लिए साथ में चलना है। उस रात वह भक्तामर स्तोत्र के उन्नीसवें श्लोक में लयलीन था। अचानक रात्री के समय सर्व दिशाओं में प्रकाश ही प्रकाश व्याप्त हो गया। देवी चक्रेश्वरी ने प्रकट होकर कहा- मैं तेरी भक्तिभाव से प्रेरित होकर तुम्हें यह चन्द्र बिम्ब अर्पण करती हूँ। इसके प्रभाव से कैसा भी अन्धेरा दूर होकर रात्री भी दिन के समान हो जायगी। वैसे यह चन्द्रबिम्ब अदृश्य रहेगा। जैसे ही तुम उन्निसवें श्लोक का स्मरण करोंगे वैसे ही यह चन्द्रबिम्ब अपने आप प्रकट हो जायगा और तेरे अभीप्सित की तत्काल पूर्ति हो जायगी कहकर देवी तिरोभूत हुई। समय पर महीधर राजा ने युद्ध के लिए विशाला नगरी से प्रयाण किया। लक्ष्मण भी उनके साथ था। वह अपनी नित्य क्रिया अचूक करता था। थोडे दिनों बाद सैन्य ने घोर अटवी में प्रवेश किया। शत्रु नगर अब

अत्यन्त समीप था। उस जंगल की पूर्णाहुति होने से पहले ही रात्री ने अपनी काली चादर इस संसार पर ओढ़ा दी। रात वहीं उस भयानक जंगल में स्थिरता करने का निश्चय किया। जैसे-जैसे रात्री गहरी होती गयी वैसे वैसे अन्धेरा भी गहरा होता गया। किसी को कुछ दिखायी नहीं दे रहा था। सभी सिपाही थर-थर काँप रहे थे डर के मारे। मसालें जलाने की सबकों मनायी की गयी थी। मसाल जलाने पर शत्रु राजा को अपने आने की खबर पड जायगी, इस डर से सबको संकेत कर दिया गया कि कोई भी मसाल न जलाये। राजा सोच रहा था कि अभी इतनी तकलीफ पड रही है तो रात्री पूरी कटेगी कैसे? इतने में लक्ष्मण को भक्तामर स्तव का प्रभाव दिखाने का विचार मन में आया। वह धीरे-धीरे स्वयं को उस अन्धकार में संभालता हुआ राजा के निकट आया। उसने राजा से विनती की कि अगर आप आज्ञा दें तो भक्तामर स्तव के प्रभाव से मैं इस रात्री में भी दिन के समान उद्योत कर सकता हूँ। राजा ने मन्त्रीश्वर के साथ विचार विनिमयकर लक्ष्मण को आज्ञा दी। आदेश पाते ही लक्ष्मण भक्तामर के उन्निसवें श्लोक, किं शर्वरीषु... का स्मरण करने लगा। देखते ही देखते चन्द्रमण्डल प्रकट हुआ। रात्री भी दिन के समान प्रतीत होने लगी। सब चकित होकर देखते हुए अपनी आँखों पर विश्वास नहीं कर रहे थे। राजा का आदेश पाते ही सेना तुरन्त उसी रात्री में आगे बढी। थोडी देर में राजा सहित सेना ने शत्रु राज्य के समीप पहुँचकर उस पर एकाएक धावा बोल दिया। शत्रु सेना तो अभी घोर निद्रा में सोयी हुई थी। अचानक हुए आक्रमण से शत्रु सैनिक दिग्मूढ होकर भागने लगे। शत्रुराजा को कैदकर बन्दी बना लिया गया। वापस राजा ने बन्दी शत्रुराजा सहित विशालापुरी की ओर प्रस्थान किया। अनुक्रम से विशाला पुरी में पहुँचे। राजसभा में महीधर राजा ने लक्ष्मण से उद्योत का कारण पूछा। उसने सविस्तृत भक्तामर स्तव की महिमा का वर्णन किया। राजा अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसे नगर का सबसे धनाढ्य सेठ बनाकर नगर सेठ की पदवी से विभूषित किया। लक्ष्मण महीधर राजा को श्री रामचन्द्र सूरिजी के पास ले आया। राजा आचार्य श्री को प्रणामकर उनके सन्मुख बैठा। गुरुदेव ने अत्यन्त मधुर स्वर से देशना दी। देशना सुनकर राजा ने जैनधर्म स्वीकारा। जीवन में कई जिनालय प्रतिष्ठा, संघ आदि कार्यकर जैनशासन का ध्वज दूर-दूर तक लहराया।

विंशतितम श्लोक : ज्ञानं यथा त्वयि...

भावार्थ : (हे प्रभु!) अनंतपर्यायवाली वस्तुओं के विषय में प्रकाश करनेवाला केवलज्ञान जिस प्रकार आपके विषय में शोभता है उस प्रकार से हरिहर आदि नायकों के विषय में ऐसा नहीं शोभता है। जिस प्रकार देदीप्यमान मणियों के विषय में तेज महत्त्व को प्राप्त करता है उस प्रकार किरणों से सहित ऐसे भी काँच के टुकडे में (तेज) महत्त्व को प्राप्त नहीं करता।

विंशतितम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा :

प्राकृतिक सौंदर्य जहां पर क्रीड़ा करता था, पहाड़ों की गोद में बसा हुआ, शत्रु के भय से मुक्त, महकते गुलाब से भरे उद्यान, भ्रमित हुई अप्सराएँ स्वर्ग समझकर मानो विनोद कर रही हों, ऐसा नागपुर नामक नगर था। वहाँ शत्रुओं की मद से ऊँची भुजाएँ झुका दी है, कामदेव का अवतार, लोकप्रिय, जिसकी कीर्ति दिग्-दिगान्तर में फैली हुई है, सत्यप्रिय, ऐसे महीपति नरेन्द्र की आज्ञा सब ओर प्रसरित थी। विधि का विधान ही कुछ अलग है। सब ओर सुख-चैन होने पर भी उसे एक कमी महसूस होती रहती और वह थी संतान की। उसके अन्तःपुर में कई रानियाँ थी किन्तु भाग्य के रूठने से राजमहल के आंगन में शरारती कोई नन्हा-मुन्ना बालक नहीं था। सूर्य नारायण उदयाचल से जागकर अपना प्रयाण शरू करते और थककर अस्ताचल की गोद में निद्राधीन हो जाते। इस प्रकार पलक झपकते ही दिन ओझल हो जाता। राजा राज्य कार्य में व्यस्त था। कई वर्ष बीत गये किन्तु परिणाम में कोई फेरफार न आया। राजा अब बच्चे की उम्मीद छोड़ बैठा था। उसे अपने राज्य की भावी चिन्ता सता रही थी। अचानक एक दिन पट्टरानी गर्भवती बनी। राजा की खुशी का ठीकाना न रहा। बड़ी यतना से गर्भ का परिपालन होने लगा। राजा स्वयं राज्य कार्य से निवृत्त होते ही रानी को कुशल-क्षेम के समाचार पूछने जाता। राजवैद्य भी हररोज आकर रानी के स्वास्थ्य की परीक्षाकर जाता। हर प्रकार से सावधानीपूर्वक गर्भवती रानी उठने, बैठने, खाने, पीने आदि की क्रिया गर्भ अनुकूल करती थी। दासियाँ उसकी सेवा में सदा हाजिर रहती थी। देखते ही देखते प्रसव दिन नजदीक आ गया।

इधर भव्यजन रूपी कुमुदिनी के लिए चन्द्र समान शीतल ऐसे श्री विजयसेनसूरि ग्रामानुग्राम विहार करते हुए नागपुर में पधारे। वे नगर के बाहर उद्यान में ठहरे। उनकी वाणी के जादू से आकर्षित होकर नागपुर के नागरिक उसका आस्वादन करने के लिए जाने लगे। उनकी प्रशंसा के चारों ओर पुष्प बिखरे हुए थे।

आबाल से लेकर वृद्ध तक उनके प्रवचन के समय नगर में नहीं मिलता था। श्रोताओं की दिनों दिन वृद्धि होती गयी। क्षेत्र योग्य जानकर एवं लोगों के भक्तिभाव को देखकर उद्यान में ही मासकल्प करने का निर्णय किया। श्रमणों की आराधना एवं अध्ययन उत्तम चल रहा था।

इधर रानी की प्रसूति का समय अत्यन्त निकट आ गया। राजसभा पूरी भरी हुई थी। महीपति राजा को पुत्र की चिन्ता सता रही थी। अपनी इस चिन्ता को वे अपने सीने के अन्दर छुपा नहीं सके। उसने राज ज्योतिषी एवं राज पुरोहित सोमदेव ब्राह्मण की ओर दृष्टि डालकर प्रश्न पूछे। आप सबको मालूम है कि पट्टरानी अब थोडे ही दिनों में सन्तान को जन्म देने वाली है, तो आप मुझे बता सकते हैं कि मेरे राजमहल में कल क्या होगा? क्या क्या घटनाएँ घटेंगी? प्रश्न सुनकर कितने ही ज्योतिषिओं ने मुख नीचाकर जमीन की ओर देखने लगे। किसीने पुत्र होने की तो किसीने पुत्री होने की भविष्यवाणी की। आपके अन्तःपुर में अब केवल शुभ ही शुभ होगा। आपके शत्रु,रोग, अनिष्ट विगेरे इस पुत्र प्रसव के प्रभाव से स्वयं विलीन हो जायेंगे। राजकोष में धन की अभिवृद्धि होगी। इस बालक के पुण्य से अब नगर में कभी दुष्काल नहीं पडेगा। इस प्रकार राजा को खुश करने के लिए अनेक विध की भविष्यवाणी कई ज्योतिषी करने लगे। राजा को इनकी भविष्यवाणी से आत्म सन्तोष नहीं हुआ। राजा समझ गया कि मेरा दिल बहलाने के लिए एवं मुझे खुश करने के लिए ये मनगढ़न्त बातें कर रहे हैं। महीपति ने अपनी प्रश्न भरी नजर सोमदेव राजपुरोहित पर डाली। सोमदेवजी! आप तो सब विद्याओं में पारङ्गत हैं किन्तु आप अभी तक मौन क्यों हैं? मुझे इन ज्योतिषिओं के समाधान से बिलंकुल आत्मसंतोष नहीं हुआ है। ये केवल मुझे रञ्जित करने के लिए, ये सब शुभ बातें कह रहे हैं इस बात का मुझे ज्ञान है। अब आप ही अपने ज्ञान बल से कोई भविष्यवाणी करीए जो एकदम सचोट हो। राजा की बात सुनकर सोमदेव ने भी अपना मुंह नीचे कर लिया। राजा यह देखकर अत्यन्त खिन्न हो गया। क्या इतनी छोटी-सी भी भविष्यवाणी करनेवाला कोई नहीं? अथवा क्या सभी ज्योतिष शास्त्र गलत है? मैं इतने पुरोहितों को पगार दे रहा हूँ किन्तु इन सब का उपयोग क्या? व्यर्थ में शांतिकर्म, हवन आदि के लिए इन पुरोहितों के भरोसे पानी की तरह पैसा बहा रहा हूँ। कुशलपूर्वक प्रसूति के लिए न जाने कितने अनुष्ठन करवा डाले। जबकि ये ज्योतिषी भी अपना भावी कहने के लिए अनिश्चित हैं। राजा के प्रश्नवाचक चेहरे को देखकर एक श्रेष्ठी ने कहा महाराज! इस नगर के उद्यान में

जैनाचार्य श्री विजयसेनसूरि ठहरे हुए हैं। सुना है वे सभी विद्याओं में पारङ्गत हैं। दिन उगते ही लोगों की बाढ़ उस ओर उमड़ पडती है। दिन भर वहाँ मैला-सा लगा रहता है। किसी भी शङ्का के निवारण के लिए सक्षम है गुरुदेव, इस प्रकार लोगों के मुंह से सुना है। अगर उनको भी यहाँ बुलवाकर पूछा जाय तो उनकी ज्ञान गहराई का भी ख्याल आ जायगा। राजा ने कहा - श्रेष्ठीजी! मुझे अब इस मन्त्र-तन्त्र-ज्योतिष जैसी विद्याओं पर विश्वास नहीं रहा। इतने बडे-बडे पुरोहित भी जहाँ कुछ कहने में विफल रहे तो दूसरे इसके बारे में क्या कह सकते हैं। मुझे तो यह सब ठगविद्या लगती है। श्रेष्ठी ने पुनः कहा - राजन् ! उनको बुलाकर परीक्षा करने में हर्ज क्या है? वैसे भी वे निस्स्पृही हैं। जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों के अलावा कोई भी वस्तु अपने पास नहीं रखते हैं। उनको धन-माल की भेंट देने की कोई जरूरत भी नहीं। अगर उनके पास इतने लोग दौड़-दौड़कर जा रहे हैं तो जरूर उनके पास कोई न कोई शक्ति होगी। राजा ने जवाब दिया - बात धन-माल देने की नहीं किन्तु विश्वास की है। अब मेरा इस पर जरा-सा भी विश्वास नहीं रहा। फिर भी आप इतना आग्रह कर रहे हैं तो आपके मन के निराकरण के लिए उन्हें भी यहाँ बुला देते हैं। तुरन्त सेवकों को आदेश दिया - आदर एवं सम्मानपूर्वक विनतीकर श्री विजयसेनसूरि को राजदरबार में ले आओ। सेवक शीघ्र ही उनको लाने के लिए रवाना हुए। इधर जिस दिन नागपुर में आचार्य देव ने प्रवेश किया था उसी रात वे भक्तामर स्तव के बीसवें श्लोक में लयलीन थे। अर्धरात्री के समय चक्रेश्वरी देवी ने प्रकट होकर उनको "सर्वप्रश्नों के ज्ञाता बनो" यह वरदान दिया था। वरदान के प्रभाव से वे कितना ही जटील प्रश्न क्यों न हो उसका समाधान कर देते थे। सामान्य प्रश्न से लेकर अतीन्द्रिय सम्बन्धी प्रश्न के निराकरण की शक्ति भक्तामर के बीसवें श्लोक के प्रभाव से उत्पन्न हो गयी थी। इनकी इस शक्ति के आधार से ही नागपुर नागरिक वशीकरण मन्त्र किये हुए के समान खिंचे आ रहे थे। सबके मनों में रहे हुए प्रश्नों का समाधान पलक झपकते ही कर देते थे। तत्त्व सम्बन्धी प्रश्नों का प्रत्युत्तर देकर कई नास्तिक एवं इतर धर्मिओं को भी जैन धर्मी बना दिये थे। आज भी प्रश्न-उत्तर का दौर चल रहा था कि इतने में राजदूत ने आकर सन्देश दिया कि आपको राजाजी राजसभा में पधारने का निमंत्रण देते हैं। भावी लाभ का विचारकर आचार्य श्री तुरन्त राजसभा में पहुँचे। राजा ने उठकर प्रणाम किया एवं सम्मानपूर्वक उनको बैठने का आसन दिया। गुरुदेव अपने स्थान पर बैठे। थोडी देर सब वैसे ही मौनपूर्वक बैठे रहे। उस मौन को चीरते हुए आचार्य श्री ने प्रश्न किया

- क्यों राजन्! मुझे क्यों याद किया गया? महीपति राजा ने जवाब दिया - मेरी एक समस्या है। उसे मेरी सभा का कोई भी सदस्य सुलझाने के लिए समर्थ नहीं हुआ इसलिए आपको याद किया। प्रश्न है कि पट्टरानी गर्भवती है। उसे क्या होगा? और उसके पूर्व एवं पश्चात् की स्थिति क्या होगी? आचार्य देव ने आँखें मूंदकर भक्तामर के बीसवें श्लोक का स्मरण किया। आँखें खोलकर कहा - राजन्! कल रानी एक पुत्र को जन्म देगी। वह पुत्र तीन नेत्रवाला होगा। तीसरे नेत्र की अपशकुनता से राज्य में कई उत्पात होंगे। बारहवें दिन तुम्हारा पट्टहस्ती मर जायगा। तेरहवें दिन जन्मे बालक का तृतीय नेत्र स्वयं विनष्ट हो जायगा जिससे उत्पन्न हुए उत्पात भी स्वयं दूर हो जायेंगे। भविष्यवाणी सुनकर राजा विचाराधीन हुआ कि इतनी दृढतापूर्वक ये भविष्यवाणी कर रहे हैं तो क्या यह वाणी सत्य होगी अथवा नहीं? ब्राह्मण एवं सोमदेव राजपुरोहित उनकी बात सुनकर जोर-जोर से हँसने लगे। क्या इस साधु की कहीं बुद्धि तो भ्रष्ट नहीं हो गयी? इस प्रकार विचारने लगे। आचार्य श्री की मश्करी करने लगे। राजा ने उन सब ब्राह्मणों को वैसा करने से रोका। इस बीच सोमदेव ने उठकर राजा से विज्ञप्ति की कि महाराज! तेरह दिन तक उन्हें यहीं रोककर रखिए। अगर इनकी भविष्यवाणी सत्य पड़ गयी तो ठीक वरना भ्रामक भयंकर अफवाह फैलाने के अपराध में कड़े से कड़ा दण्ड दिया जाय। मुझे तो यह कोई पागल दिखता है। शिवजी को छोड़कर इस दुनिया में तृतीय नेत्र किसी का भी नहीं हो सकता। उस तृतीय नेत्र को उत्पात का कारण बताकर अपने धर्म की अवहेलना कर रहे हैं। भविष्यवाणी की ओट में अन्य धर्म की निन्दा करने का मौका मिल गया। श्री विजयसेनसूरि बोले - आप हमारे भागने की चिन्ता मत करीए। हम यहाँ एक मास तक स्थिर वास करेंगे। अभी तो हमारे यहाँ आये हफ्ता ही बीता है। फिर भी अगर आपको हमारे भागने पर की कोई शङ्का है तो आप हमारी निगरानी के लिए सिपाही रख सकते हैं। हमें किसी बात का कोई एतराज नहीं। सोमदेव ने राजा के समीप आग्रहकर अपनी बात मना ली और उद्यान के चारों ओर घेरकर सैनिकों का पहरा लगा दिया। आचार्य श्री तो वापस लौटकर ध्यान आदि अपनी दैनिक क्रियाओं में रत हो गये। दूसरे दिन मध्याह्न के समय पट्टरानी ने तीन नेत्रवाले बालक को जन्म दिया। राजा को पुत्र जन्म की बधाई दी गयी। चारों और नगर में खुशियाँ ही खुशियाँ छा गयी। सबके दिल में एक ही प्रश्न उठ रहा था कि बालक दो नेत्रवाला जन्मा है अथवा तीन। इतने में प्रसवकक्ष से दौडती-दौडती आयी दासी ने राजा एवं अन्य मुख्य लोगों को समाचार दिये कि

बालक तीन नेत्रवाला है। राजा ने आश्चर्यचकित होकर सोमदेव की ओर देखकर पूछा क्यों पुरोहितजी आचार्य श्री की वाणी सत्य पडी या नहीं? सोमदेव बोला राजन्! भले ही तीन नेत्रवाले बच्चे के जन्म की वाणी सत्य पड़ी किन्तु मैं नहीं मानता कि यह शिवजी का तृतीय नेत्र उत्पात का कारण हो। बल्की उलटा इससे तो और ज्यादा ही ज्यादा इस राज्य की वृद्धि का संकेत है। बारहवें दिन का इन्तजार कीजिए। आपके पट्टहस्ती के मरने की खबर इस कान में पड़ते ही मैं उनको सच्चा भविष्यवेत्ता मान लूंगा। किन्तु मुझे नहीं लगता कि ऐसा कुछ होगा। राजा ने सोचा चलो इसकी भी परीक्षा कर ले। पुरोहित वहाँ से निकलकर सीधा महावत के पास पहुँचा। उससे कहा इस पट्टहस्ती की बराबर देखभाल करना। तुम्हारे और राजवैद्य के बिना यहाँ कोई आ न पाये। मैं राजवैद्य को साथ में ले आयां हूँ। यह इसकी परीक्षा करेंगे कि हाथी की तबीयत कैसी है? वैद्य ने हाथी की परीक्षाकर कहा इसकी तबीयत तो बिलकुल ठीक है। चिन्ता की कोई बात नहीं। पुरोहित ने महावत से कहा बारह दिन तक इसकी अत्यन्त हिफाजत रखना। अगर कोई बिमारी दिखायी दे तो शीघ्र राजवैद्य को बुलावा भेज देना। बारह दिन बाद आचार्य की भी खबर लेता हूँ इस हाथी को जिन्दा रखकर। यों कहकर वापस वे दोनों लौट गये। इधर उस बालक के तृतीय नेत्र के कारण कई अशुभ समाचार आने लगे। दूसरे ही दिन पट्टरानी अत्यन्त बिमार पड़ गयी। दो दिन बाद राजा का स्वास्थ्य बिगडने लगा। दूसरे शत्रु राजा के नागपुर पर आक्रमण की खबर आयी। महामारी का रोग पुरे नगर में फैलने लगा। इस प्रकार अनेक अशुभ संकेतों से ग्यारह दिन बीत गये। ग्यारहवें दिन शाम को जाकर पुरोहित ने देखा कि पट्टहस्ती की तबीयत में कोई फेरफार नहीं हुआ सोचकर अत्यन्त खुश हुआ। अब आचार्य की वाणी झूठी ठहराने का अच्छा अवसर हाथ लगा है। बारहवाँ दिन आया। सोमदेव पुनः हस्तिशाला में पहुँचा। उसने हाथी को सही सलामत देखकर सीधा राजसभा में गया। सभा पूरी भरी हुई थी। राजा ने पुरोहित से पूछा क्या समाचार लाये हो? पुरोहित ने कहा मैं अभी-अभी सीधा हस्तिशाला से यहीं आ रहा हूँ। मैंने खुद तपासकर देखा कि पट्टहस्ती के नख में भी रोग नहीं है। इसलिए उद्यान से आचार्य को बुलाकर उन्हें कैदखाने में डालना चाहिए। आगे कुछ और कहे उससे पहले ही महावत ने दौड़ते हुए आकर कहा - महाराज पट्टहस्ती ने सदा-सदा के लिए आँखें मूंद ली हैं। न जाने क्यों, कैसे हुआ कुछ मालूम नहीं पड़ा। बात सुनकर राजा ने मुख पर हर्ष मिश्रित शोक उभर आया। आचार्य श्री के ज्ञान से हर्ष एवं

पट्टहस्ती के मरने से अत्यन्त शोक हुआ। आदरपूर्वक श्री विजयसेनसूरि को राजसभा में लाने के लिए राजा स्वयं गये। सम्मान एवं आदरपूर्वक आचार्य श्री को राजसभा में ले आये। सिंहासन पर बिठाया। नीचे मुंह किये हुए सोमदेवने भी आचार्य श्री को प्रणामकर उनसे क्षमायाचना मांगी। आचार्य श्री ने सुन्दर एवं मधुर स्वर से सत्य स्वरूप को प्रकट करनेवाली देशना दी। कई लोगों ने नानाविध प्रश्न किये। वरदान के प्रभाव से श्री विजयसेनसूरि ने भी उनका जड़मूल से निराकरण कर सबको जैनधर्म के प्रति श्रद्धावान बनाया। अन्त में राजा ने प्रश्न किया - गुरुदेव! नगर में कई उपद्रव फैले हुए हैं। पट्टरानी की बीमारी, महामारी, शत्रुराजा का आक्रमण आदि कई खतरें इस नगर पर मंडरा रहे हैं। उनके शमन का कोई उपाय हो तो बताइए। श्री विजयसेनसूरि ने कहा - कल सुबह ये सब अपने आप शान्त हो जायेंगे। कल सुबह होते ही तुम्हारे पुत्र का तृतीय नेत्र विलीन हो जायगा। तब ये उपद्रव भी विलीन हो जायेंगे। तेरहवें दिन आचार्य श्री ने जैसा कहा था सब वैसा ही घटित हुआ। अब तो प्रजा एवं राजा का आदर आचार्य श्री के प्रति अत्यन्त बढ़ गया था। रोज सभा में आकर धर्मदेशना देते। राजा ने भी जैनधर्म स्वीकारा। एक दिन राजा ने आचार्य श्री से भविष्यवाणी की लब्धि उत्पन्न होने का कारण पूछा। आचार्य श्री ने भक्तामर स्तव की महिमा का वर्णन किया। सब लोग भक्तामर स्तव के प्रति आदरवाले होकर उसे सिखने लगे। आचार्य श्री मासकल्प पूर्ण होते ही वहाँ से विहार कर गये। महीपति राजा आगे जाकर द्वादश व्रतधारी श्रावक हुआ। अपने देश में कई नये जिनालयों का निर्माण एवं पूराने जिनमंदिरों का जीर्णोद्धार कर वह जैनधर्म की उन्नति में सहायक बना।

प्रश्न : गुरु को कैसे शिष्य क्रोध उत्पन्न करवाते हैं और कैसे शिष्य आनंद उत्पन्न करवाते हैं?

(१) गुरु के वचन सम्यक् प्रकार से न सुननेवाले, (२) बार-बार विपरीत बोलनेवाले, (३) दुष्टाचरण वाले शिष्य गुरु को क्रोधी बनाते हैं।

(१) चित्तानुकूल वर्तन करनेवाले, (२) शीघ्र कार्य करनेवाले, (३) अपने को गुरु का गुलाम, नौकर, दास माननेवाले शिष्य गुरु को आनंदित करते हैं।

एंकविंशतितम श्लोक : मन्ये वरं...

भावार्थ : (हे स्वामी!) हरिहरादिक देव देखे गये वह अच्छा हुआ इस प्रकार मै मानता हूँ। (क्योंकि) जो हरिहरादिक देव देखने से मेरा मन आपके विषय में संतोष को प्राप्त करता है। देखे गये ऐसे आपके द्वारा क्या फल? (आपको देखने से हे नाथ!) इस पृथ्वी पर अन्य भव में भी दूसरा कोई भी देव मेरे मन का हरण नही करता।

एकविंशतितम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा :

आचार्य श्री जीवदेवसूरि एक समर्थ विद्वान थे। विद्वत्ता के साथ-साथ उनके सुदीर्घ एवं शुद्ध चारित्र पर्याय से आकृष्ट होकर कई विद्याएँ स्वयमेव सिद्ध हो चूकी थी। श्री जीवदेवसूरि ने परकाय प्रवेश विद्या की भी सफल साधना की थी। विद्याओं के धनी आचार्य श्री एक बार रात्री के समय भक्तामर के इक्कीसवें श्लोक का, लयलीन होकर ध्यान कर रहे थे। उस श्लोक के सूक्ष्म से सूक्ष्म चिंतन में मग्न थे। उसके ध्यान के प्रभाव से चक्रेश्वरी देवी का आसन चलायमान हुआ। अपने स्थान से श्री जीवदेवसूरि के पास आकर प्रणामकर कहा - आप एक महान् साधक हैं। आपके पास विद्याओं की कोई कमी नहीं है। आपके ध्यान से एवं भक्तामर स्तव की महिमा से आकृष्ट होकर मैं आपको 'किसी भी देव का स्वरूप प्रकट करने का वरदान देती हूँ'। पुनः वन्दनकर देवी स्वस्थान पर लौट गयी। आचार्य श्री अनेक देश के भव्यजनों को प्रतिबोधित करते हुए सौराष्ट्र देश में पधारे। यहाँ अनेक ग्रामों को पावन करते हुए प्रभास पाटण पहुँचे। श्रावकों को खबर पड़ी कि महान् आचार्य श्री जीवदेवसूरि अपने नगर में पधार रहे हैं। सब हर्षोल्लास से उनके स्वागत के लिए सामने गये। आचार्य श्री को प्रणामकर स्थिरवास की विनती की। आचार्य श्री मुट्ठीभर श्रावकों को देखकर विचाराधीन हुए। प्रवेशयात्रा नगर के मुख्य मार्ग से होती हुई श्री चन्द्रप्रभ स्वामी के विशाल मंदिर में गयी। तेजस्वी प्रतिमा देखकर आचार्य श्री ने भावविभोर होकर स्तुति की। फिर अपने ठहरने के स्थान पर आये। थोडी देर प्रवचन सुनकर सबने विदाई ली। दोपहर के समय श्री संघ आचार्य श्री के समीप आया। आचार्य श्री ने उनसे पूछा इतना बडा शहर एवं इतना बडा जिनमंदिर होते हुए भी जैनों की संख्या अति सीमित दिखायी देती है। क्या धर्म का निर्वाह तो बराबर होता है न यहाँ पर? एक वृद्ध ने जवाब दिया - पहले यहाँ भी जैनों की बहुत संख्या थी। सब ओर जैनों का वर्चस्व था। धर्मक्रियाएँ एवं शासन भी उन्नति के शिखर पर था। नित नये-नये अनुष्ठान होते रहते थे। किन्तु जब से यहाँ साधु-

साध्वियों का आवागमन बन्द हुआ है तब से मिथ्यादृष्टिओं का साम्राज्य छाने लगा। मैंने अपनी इन आँखों से यहाँ पर जैनधर्मियों की उन्नति एवं अवनति के दर्शन साक्षात् किये हैं। यहाँ विशाल सोमदेव का मंदिर है। शैव धर्म का प्रभुत्व चारों ओर छाया हुआ है। उनके संपर्क से कई जैनी भी शैव में परिवर्तित हो गये। हमें त्यौहार, जैसे पर्व पर्युषण आदि के दिनों में कितनी ही कठिनाइयों का सामना करना पडता है। फूल, घी आदि की कीमत विरोधी दुगुनी कर देते हैं। कोई भी कार्यक्रम करने से पहले इनकी आज्ञा लेनी पड़ती है। अब हमारे थोड़े ही घर बचे हैं। अगर यहीं परिस्थिति रही तो जैनों का नाम सदा-सदा के लिए मिट जायगा। जिनालय में भी भगवान की मूर्ति उठाकर उसके स्थान पर सोमदेव की मूर्ति बिठा देंगे। आप तो समर्थ विद्वान एवं विद्याओं में पारङ्गत आचार्य हैं। अब आप ही इस नगर को विहार क्षेत्र के अनुकूल बनाने की कृपा करें। यहाँ ऐसा कुछ करें कि जैनधर्म का ध्वज सदा फहरता रहे। आचार्य श्री ने प्रत्युत्तर दिया-यह बहुत चिन्ता एवं दुःख की बात है कि जैनियों को ऐसी मुसीबतों का सामना करना पड़ रहा है। इसके लिए मैं हर संभव प्रयत्न करूंगा। आप सब सुबह ठीक नौ बजे तक यहाँ आ जाइए। फिर मैं आप सबको कुछ कर दिखाऊँगा। सब आशा एवं हर्ष के साथ विसर्जित हुए कि जरूर आचार्य भगवन्त कुछ न कुछ नया कर दिखायेंगे। सुबह होते ही सब श्रावक हाजिर हो गये। आचार्य श्री ने ध्यान से निवृत्त होकर सब श्रावकों से कहा-चलो मेरे साथ मुझे सोमदेव के मंदिर में ले चलो। सबको उन पर अटूट विश्वास था। किसी ने यह प्रश्न नहीं किया कि उन मिथ्यादृष्टिओं के मंदिर में क्या काम है? वे तो आचार्य श्री की श्रद्धा पर से उनके साथ सोमदेव मंदिर की ओर चले। सोमदेव के मंदिर के समीप पहुंचते ही लोगों का मैला-सा जम गया। लोग सोच रहे थे कि इन जैन साधुओं का यहाँ क्या काम? उनकी धर्मशाला एवं जिनमंदिर तो उधर है, तो ये इस ओर क्यों चले आये? आज से पहले तो यहाँ कोई साधु नहीं आया? भला ये क्यों चले आये? आचार्य श्री ने श्रावकों सहित मंदिर में प्रवेश किया। लोग यह दृश्य देखकर दूर से दौड़ते आये। पूरे नगर में बात फैल गयी कि जैनों के महान् आचार्य ने सोमदेव के दर्शन के लिए उनके मंदिर में प्रवेश किया है। कई अन्ध श्रद्धालु शिव के गुणगान करने लगे कि अहो सोमदेव की महिमा ही निराली है जिससे जैनों के साधु भी उनके दर्शन के लिए आये हैं। कई कुतूहलवश देखने के लिए आये कि जैन साधु सोमदेव के मंदिर में क्या करने जा रहे हैं? तो कई सोमदेव की महिमा समझकर। आचार्य श्री ने सोमदेव की मूर्ति के

आगे आँखें बन्दकर भक्तामर के इक्कीसवें श्लोक का स्मरण किया। आँखें खोलकर कहा-चलो सोमदेव! ये शब्द कहते ही सोमदेव उस मूर्ति से साक्षात् प्रकट हुए। वे आचार्य श्री के पीछे-पीछे चलने लगे। आचार्य श्री ने रूप प्रकटन विद्या से सोमदेव के आगे ब्रह्मा, विष्णु, कार्तिकेय, गणेशजी आदि कई देवों के रूप प्रकट किये। सब रूप सोमदेव के आगे-आगे चल रहे थे। ये देखकर कई लोगों को अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हुआ। वे सोचने लगे कि कहीं हम सपना तो नहीं देख रहे हैं? सब विस्मित होकर उनके साथ चलने लगे। रास्ते में रही दुकानों के मालिक यह नजारा देख, अपनी दुकानें बन्दकर उनके साथ-साथ हो लिये। सबके मन में कई तरह के प्रश्न उठ रहे थे। आचार्य श्री ने श्री चन्द्रप्रभ स्वामी के मंदिर में प्रवेश किया। उनके पीछे-पीछे सोमदेव आदि एवं लोगों ने भी प्रवेश किया। अन्दर जाकर सभी देवों ने श्री चन्द्रप्रभ स्वामी की मूर्ति को प्रणाम किया। यह देख सब लोगों ने भी उनको प्रणाम किया और सोचा वास्तव में ये भगवान देवाधिदेव हैं। आचार्य श्री ने श्री चन्द्रप्रभ स्वामी की पूजा के लिए कर मांगा। सोमदेव ने वह कर स्वीकार किया। उसके बाद आचार्य श्री ने उन देवों को विसर्जित कर दिया और वे अदृश्य हो गये। आचार्य श्री उपाश्रय में वापस लौटे। महान शासन प्रभावना हुई। फिर से वहां साधु-साध्वी का विचरण होने लगा। जैनों की बस्ती दिन-ब-दिन बढ़ने लगी। मिथ्यादृष्टि जो चन्द्रप्रभ स्वामी के ऋणी हुए वे जिनेश्वर को महादेव मानने लगे। कारण कि साक्षात् देखने पर कौन विश्वास नहीं करे? कर रूप में पुष्प, शक्कर, तेल, नैवेद्य, केसर, कुङकुम, कर्पूर, कस्तूरि आदि श्री चन्द्रप्रभ स्वामी की पूजा के लिए देने लगे। उस मंदिर की प्रशंसा सुनकर दूर दूर से यात्रालु दर्शनार्थ आने लगे। इस प्रकार जैनशासन की महान प्रभावना हुई।

प्रश्न : अंतरंग आशय कब प्रकट हो जाता है?

कुविअस्स आउरस्स य, वसणासत्तस्स रायस्तस्स।
मत्तस्स मरंतस्स य, सब्भाया पायडा हुन्ति ॥

क्रोध, रोग, कष्ट, राग में रक्त, मत्त और मृत्यु के समय अंतरंग आशय प्रकट हो जाता है।

द्वाविंशतितम श्लोक : स्त्रीणां शतानि...

भावार्थ : सैंकडों स्त्रियाँ सैंकडों पुत्रों को जन्म देती हैं (किन्तु) आपके जैसे पुत्र को दूसरी माता ने जन्म नहीं दिया (क्योंकि) सब दिशाएँ नक्षत्रों को धारण करती है (किन्तु) पूर्व दिशा ही देदीप्यमान किरणों के समूहवाले सूर्य को उत्पन्न करती है।

द्वाविंशतितम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा :

विद्वानों से खचाखच भरा ऐसा 'श्री गुरुडशस्त्र' नगर। यहाँ सामान्य प्रजा भी ज्ञानरसिक थी एवं नित्य नये अध्ययन के लिए लालायित रहती थी। घर-घर ज्ञान-गोष्ठी होती थी। कामकाज से निवृत्त होकर शाम के समय वहाँ के लोग अपने हम उम्र के साथ मिलकर विविध विषयों पर चर्चा करते रहते थे। वहाँ का राजा कट्टर बौद्धधर्मी था किन्तु था निष्पक्ष। आये दिन जैन श्रमण एवं बौद्ध पण्डितों के बीच वाद-विवाद होता रहता। वहाँ वृद्धकर नामक बौद्ध आचार्य एक बेजोड़ विद्वान थे किन्तु उस विद्वत्ता को मलीन करनेवाला मान उसके साथ जुड़ा हुआ था। अपने तर्कबल से कई धर्मियों के दिग्गज पण्डितों को जमीन की धूल चटा दी थी। अभी तक उसका पाला किसी विद्वान जैन साधु से नहीं पड़ा था। हाथी जंगल में तब तक ही गर्जते हैं जब तक दहाड़ता केशरी सिंह नहीं आता। गर्व के कारण बौद्ध आचार्य का सिर सदा उन्नत रहता। उसके पैर जमीन पर नहीं रहते थे। वह इतर धर्मियों को हीनता भरी नजर से देखता था। ऊपर से राजा का सहयोग मिल जाने से मानो स्वयं को बृहस्पति का अवतार मानता था। उसकी चाल, खाना, पीना, बैठना आदि हर क्रिया से अहम् टपकता रहता। उसकी वाणी में भी कटुता एवं कर्कशता पैदा हो गयी थी इस अभिमान के कारण। एक दिन विद्वानों के मद को गालने में समर्थ ऐसे भुवन नामक मुनिराजश्री का उस नगर में आगमन हुआ। उनकी ओजस्वी वाणी की शक्ति से श्री गरुडशस्त्र नगर के नागरिक उनके प्रति प्रीतिवाले हुए। अन्य दर्शनी भी उनकी वाणी का श्रवण करने के लिए आने लगे। कोई भी विषय ऐसा नहीं जो इनके लिए अज्ञात हो। हर विषय पर तलस्पर्शी अध्ययन किया हुआ था। उनकी प्रशंसा की मधुर झंकार वृद्धकर के कानों में भी पड़ी। उनके गुणों की प्रशंसा उसके लिए असह्य हो गयी। रात में भी उसकी नींद हराम हो गयी। जब बौद्ध उपासक भी उनकी प्रशंसा करने लगे तब आग में घी डालने के समान ईर्ष्याग्नि अत्यन्त प्रज्वलित हो गयी। कई ईर्ष्यालु अन्ध बौद्ध भक्तों ने उसे और ज्यादा उकसाया। आचार्यजी! आपके होते हुए भी जैनधर्म की जयजयकार इस नगर में हो रही है, यह बड़े शरम की बात है। दूसरे ने कहा - अपने आचार्य के ज्ञान के आगे,

उस बिचारे का ज्ञान क्या मायना रखता है? चूहा तब तक ही शेर बनकर घूमता है जब तक बिल्ली नहीं आती। उन अज्ञ लोगों से अपने आचार्यजी का वाद-विवाद शोभास्पद नहीं। तीसरे ने कहा - यह सही कह रहा है। उसकी तुलना आचार्यजी के साथ करना अर्थात् मेरु और सरसव की तुलना करने के बराबर है। ये प्रजाजन तो मूढ़ हैं। थोड़ा मीठा बोला कि बस उसकी तारीफ में पुष्प बिखेर देते हैं। भला वे क्या जाने आचार्य श्री के ज्ञान की अगाधता को। चौथा बोला - सब बराबर है किन्तु जब तक एक भी वादी बाकी हो तब तक आचार्यजी की कीर्ति में चन्द्र के समान कलंक रह जाता है। एक देश के राजा को छोड़कर पूरे विश्व के राजाओं पर भले ही विजय प्राप्त कर ले तो भी विश्व विजेता सम्राट् नहीं कहलायेगा। और यह शत्रु तो साक्षात् अपने नगर में मौजूद है और उसकी प्रशंसा पूरे नगर में फैली हुई है। इसलिए इसे सबक सिखाकर दुनिया को दिखाना है कि बौद्धधर्म समान धर्म एवं वृद्धकर समान पण्डित इस पूरे विश्व में कोई नहीं है। बातें सुनकर वृद्धकर आचार्य का छल-छलकर मद छलकने लगा। आँखें क्रोध से लाल हो गयी। उसने सोचा-एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकती। शेर की खाल ओढ़ने से गीदड़ कोई शेर नहीं बन जाता। मेरे कीर्ति रूपी सूर्य प्रताप को ग्रसित करनेवाले इस राहु को पूरा का पूरा निगल जाऊंगा। आज दिन तक इतने साधु आये है किन्तु इनके जितनी प्रशंसा किसी की नहीं हुई। इसलिए इसे परास्त करना ही पड़ेगा वरना मेरे उज्ज्वल जीवन में एक काला धब्बा रह जायगा। दूसरे दिन राजसभा में राजा के समक्ष श्री भुवन मुनि को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। श्री भुवन मुनिराज भी उसकी ललकार सुनकर वाद के लिए तैयार हुए। शास्त्रार्थ का दिन तय किया गया। जैनियों के दिल में भय था कि आचार्य वृद्धकर को शास्त्रर्थ में जीतना महामुश्कील है। आज तक उन पर कोई विजय प्राप्त नहीं कर सका था। धुरन्धर से धुरन्धर विद्वान भी मुंह की खाकर यहाँ से भाग गये थे। आज प्रथम बार किसी विद्वान जैन साधु के साथ वाद होने जा रहा था। उधर बौद्ध लोग बातें कर रहे थे कि बिचारे उस सामान्य जैन साधु की क्या हैसीयत कि वह आचार्यश्री का सामना कर सके। क्या कभी सिंह के साथ हिरण का मुकाबला योग्य है? वाद शुरु होते ही आचार्य श्री के तर्क से उल्टे पैर भाग जायगा। कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगु तैली। वाद का दिन समीप आ गया। राजसभा में ठीक समय पर दोनों उपस्थित हुए। वाद शुरु हुआ। वृद्धकर ने अपना प्रथम पक्ष रखते हुए कहा - जगत् की सभी वस्तुएँ क्षणिक हैं। वे सत् रूप हैं। विद्यमान रूपवाली हैं। और जो सत् होता है वह क्षणिक होता है ऐसा

नियम है। पदार्थ मात्र भिन्न भिन्न अवयवों के संकलन से बने हैं। तो कोई एक अवयव नहीं है। श्री भुवन मुनिने उत्तर दिया - सब वस्तु क्षणिक हो तो प्रथम देखी हुई वस्तु का तुरन्त नाश हो जाना चाहिए। किन्तु उससे विपरीत पहले देखा हुआ मनुष्य आज भी दिखायी देता है। और संसार भर में अनेक प्रकार की लेन-देन करनेवाले की हाजिरी ही नहीं जहाँ, वहाँ लेन-देन कैसी? किन्तु वह हो रही है। और काटे हुए नाखून फिर से बढ़ते हैं। किन्तु मूल में से काटने पर फिर से नहीं बढ़ते। अर्थात् वस्तुमात्र द्रव्य की अपेक्षा से नित्य है। किन्तु क्षण-क्षण में स्थिति बदलने से क्षणिक कही जाती है। किन्तु कोई अवयवी नहीं है, ऐसा कहना बिलकुल गलत है। उत्तर सुनकर सब चकित रह गये। आचार्य ने कई प्रकार से वाद किया किन्तु भुवन मुनिराज श्री ने उत्तर-प्रत्युत्तर से सर्वथा निरुत्तर कर दिया। सभा में श्री भुवन मुनिराज श्री का जयघोष हुआ। सदा गर्व से आचार्य श्री का उन्नत मस्तक आज नीचे झुक गया। वे जमीन की ओर देखने लगे। उनकी स्थिति काटो तो खून नहीं वैसी हो गयी। राजा ने भुवन मुनि को विजयी घोषित किया। चारों ओर जैनधर्म की प्रशंसा होने लगी। कट्टर बौद्ध धर्मी मुंह छिपाकर राजसभा से भाग गये। वृद्धकर आचार्य को इस पराजय से गहरा सदमा लगा। उनका घर से निकलना बन्द हो गया। मानी का मान शिखर सीसे जैसा होता है जिसे ठेस लगते ही क्षणभर में टूट जाता है। उसका शरीर प्रतिदिन कृश होने लगा। मुनि से बदला लेने की भावना में ही हृदय पर जोर का आघात लगा जिससे उसके प्राण-पंखेरू उड़ गये। मरकर नगर के बाहर रहे हुए यक्ष मंदिर में यक्ष रूप में उत्पन्न हुआ। इधर श्री भुवन मुनिराज श्री जैन धर्म की सुगंध फैलाकर कई बौद्धों को भी प्रतिबोधितकर विहारकर चले गये। उनके चले जाने के बाद एक दिन उस यक्ष हुए आचार्य के जीव ने सोचा मैं यहाँ कहाँ से उत्पन्न हुआ हूँ? विभंग ज्ञान से अपने वैरी को देखकर उसको सताने के लिए उसके समीप गया। मुनि ध्यान में लीन थे। उनके शरीर के चारों ओर आभा मण्डल प्रसरित था। मुनि के तप-त्याग से लाख प्रयत्न करने पर भी वह उसका कुछ नहीं बिगाड़ सका। अन्त में थक-हारकर वापस अपने मंदिर के पास आया। उसने सोचा मुनि का मैं कुछ नहीं बिगाड सका किन्तु उनके भक्तों को तो सता सकता हूँ। इस प्रकार विचारकर सङ्घ पर उपद्रव शुरू किये। उसके प्रतिकार के कई उपाय सोचे किन्तु सब निष्फल गये। दिन-रात श्रावक-श्राविकाओं को सताने पर श्री संघ ने इकट्ठे होकर निर्णय किया कि यहाँ से समीप में ही विचर रहे श्री आर्य खपुट आचार्य को विज्ञप्तिकर शीघ्र यहाँ ले आओ। आचार्य को विनती करने के लिए संघ

के अग्रगणियों ने तुरन्त वहाँ से प्रयाण किया। उनके पास पहुँचकर सारी स्थिति की जानकारी दी। आचार्य श्री भी विघ्न निवारण के लिए शीघ्र उग्र विहारकर श्री गरुडशस्त्र नगर पहुँचे। आचार्य श्री के पास वैसे कई विद्याएँ थी किन्तु भक्तामर के बावीसवें श्लोक के जाप से दुष्ट यक्ष को दलन करने की शक्ति प्राप्त हुई थी। नगर में पहुँचकर श्री संघ की बिगडी स्थिति देखकर जल्दी उस दुष्ट यक्ष के मंदिर के पास पहुँचे। मंदिर में जाकर यक्ष के कानों पर पूराने दो जूते लटकाकर, उसकी छाती पर पैर रखकर और स्वयं का शरीर कपड़े से ढककर सो गये। इतने में यक्ष मंदिर का पुजारी वहाँ आया। उसने यक्ष की मूर्ति पर पैर देखकर कहा हे पापिष्ठ उठ जा नहीं तो मर जायगा। तुझे मालूम नहीं कि किसकी प्रतिमा है यह? मेरी बात मान जा, वरना अभी मजा चखाता हूँ कहकर उन्हें खिंचने लगा किंतु उनकी अंगुली भी सरकाने में नाकाम रहा। इतने में राजा यक्ष के दर्शन के लिए आया। यक्ष का अपमान देख उसने कहा रे दुष्ट! अज्ञानी! कौन है तू और किस लिए इस प्रकार सोया हुआ है? आचार्य श्री ने राजा की बात अनसुनी कर दी। राजा का गुस्सा और बढ़ गया। उसने सिपाही से कहा - इस दुष्ट को चाबुक से इतना मारो कि नानी याद आ जाये। सिपाही चाबुक से मारने लगा। आचार्य श्री तो पहले के समान अपनी मस्ती में सोये हुए थे। मार की असर उनके शरीर पर जरा-सी भी नहीं थी। ज्यों ज्यों जोर लगाकर चाबुक मारने लगा त्यों त्यों अन्तःपुर में हाहाकार मचने लगा। आचार्य श्री को मारे जाते हुए चाबुक अन्तःपुर में रानियों को लग रहे थे। रानी के शरीर पर चाबुक की मार के स्पष्ट निशान उभर आये। राजा सोचने लगा कि अजीब आदमी है यह, इतनी मार पडी किन्तु मुंह से उफ तक नहीं निकली। इतने में एक सिपाही दौड़ता आया राजमहल से। उसने कहा - राजन्! आपकी रानियों को कोई चाबुक से मार रहा हो वैसे चिल्ला रही हैं। पुरे अन्तःपुर में शोर-गुल मच गया है। तुरन्त राजा समझ गया कि यह इस आदमी की ही करामत है। उसने सिपाही से जैसे ही चाबुक मारने का मना किया वैसे ही रानियाँ को भी मार पड़नी बन्द हो गयी। राजा ने आचार्य श्री के समीप जाकर उनके चरणों में गिरकर क्षमा मांगी और पूछा योगीजी! आप कौन हैं? आप अपने दर्शन दीजिए। आचार्य श्री ने अपने शरीर पर से कपड़ा हटाया। यक्ष ने भी प्रकट होकर उनके चरणों में गिरकर क्षमा मांगी। आचार्य श्री ने भर्त्सनाकर और बाद में प्रतिबोध देकर उसे सङ्घ की रक्षा के लिए सेवक बनाया। यक्ष को भी अपनी गलती का एहसास हुआ कि वास्तव में अभिमान के कारण मेरा पूर्वजन्म एवं इस जन्म में भी पराभव

हुआ। सङ्घ रक्षा की जिम्मेदारी उसने भी स्वीकारी। राजा एवं यक्ष सहित आचार्य श्री नगर की ओर चले। उनके साथ पानी की दो कुण्डियाँ भी चली। आचार्य श्री ने ब्रह्मा, विष्णु, आदि कई देवों के रूप भी विकुर्वे। वे भी साथ-साथ चलने लगे। नगर के लोग भी सब कुतूहल देखने के लिए आये। नगर का द्वार आते ही आचार्य श्री ने अन्य देव एवं यक्ष को विसर्जित किया। पानी की कुण्डियाँ वहीं स्थिर हो गयीं। राजा, प्रजा और आचार्य श्री ने नगर में प्रवेश किया। उन स्थिर हुई पानी की कुण्डिओं को हिलाने के लिए कोई समर्थ नहीं हुआ। राजा ने महामहोत्सवपूर्वक नगर प्रवेश करवाया। पौषधशाला में जाकर आचार्य श्री ने मधुर शब्दों में व्याख्यान दिया। व्याख्यान सुनकर राजा एवं अन्य बौद्ध प्रतिबोधित हुए। सबने जैनधर्म स्वीकारा। राजा ने इतने बडे एवं दुष्ट यक्ष के निग्रह का कारण पूछा। आचार्य श्री ने भक्तामर स्तव के बावीसवें श्लोक का वर्णन किया। जैन धर्म की महान प्रभावना में सहायक बने भक्तामर एवं आचार्य श्री आर्यखपुट सूरीश्वरजी।

प्रश्न : किसका कौन सा आयुष्य?

द्रुमेषु सलिलं सर्पिर्नरेषु मदने मनः।
विद्या स्वभ्यसनं न्यायः श्रियामायुः प्रकीर्त्तितम् ॥

वृक्ष का जल, नर का घृत, कामदेव का मन, विद्या का परावर्तन, और लक्ष्मी का आयुष्य न्याय बताया हुआ है।

प्रश्न : सभी गुणों का नाश कब होता है?

लाउअबीअं, इक्कं नासइ भारं गुडस्स जह सहसा।
तह गुणरागं असेसं असच्चवयणं विणासेइ ॥

जैसे कटु तुंबे का एक बीज एक भार गुड का नाश करता है वैसे एक असत्य वचन सभी गुण समूह का नाश करता है।

प्रश्न : पंचाग्नि के नाम कौन से?

वेद में अन्वहार्य, पचन, गार्हपत्य, आहवनाय और आवसथ्य ये पांच अग्नि बताये हैं।

पंचाग्नि तप करनेवाला स्वयं के चारो दिशा में चार नामों के योग्य अग्नि सुलगा कर मस्तक पर सूर्याग्नि को सहन करता है।

त्रयोविंशतितम श्लोक : त्वामामनन्ति...

भावार्थ : मुनि आपको उत्कृष्ट पुरुष रूप, सूर्य जैसी कान्तिवाले, निर्मल (और) अन्धकार से दूर रहे हुए मानते हैं। (तथा) आपको ही सम्यग् प्रकार से प्राप्तकर मृत्यु को जीतते हैं। हे मुनीन्द्र! मोक्षपद का उपद्रव रहित मार्ग दूसरा कोई भी नहीं है।

त्रयोविंशतितम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा:

उज्जयिनी नगरी का वह मनोहर उद्यान था। किन्तु किसी कारण वश उसका स्वरूप अत्यन्त भयंकर बन गया था। पहेले इस बगीचे में नगर के एवं परदेशी लोग अपनी थकान मिटाने के लिए एवं मन बहलाने के लिए आते रहते थे। रात्री में विश्राम स्थान भी था वह पथिकों के लिए। सर्व ऋतुओं में भी वनराजि यहाँ खिली रहती थी। दिन भर की मानसिक एवं शारीरिक थकान मिटाने का रामबाण उपाय था यह उद्यान। किन्तु काल की कलुषता के कारण यह उद्यान भी मानो श्मशान में बदल गया था। अब इस उद्यान में अकेले पैर रखने में भी डर लगता था। कारण कोई और नहीं किन्तु उस उद्यान में रहा हुआ चण्डिका देवी का मंदिर था। चण्डिका देवी लोगों को सताने लगी। पशुओं की बली की याचना करने लगी। उपद्रव निवारण के लिए लोग भी पशुओं की बली चढ़ाने लगे। चारों ओर हड्डी, खून, मांस, चर्बी आदि बिखरे हुए थे उस उद्यान में। उद्यान का तो नामशेष रह गया था। वास्तव में वह यमनगर प्रतीत होता था। दुष्ट देवी बली के दान से अत्यन्त प्रसन्न थी। खून, मांस आदि देखना उसे अत्यन्त प्रिय था। कोई भूला भटका मुसाफीर वहां रात ठहर जाय तो न जाने उसे कितनी मुसीबतों का सामना करना पड़ता था। यदि वह वहाँ से जिन्दा निकल आये तो यह उसका भाग्य कहा जाता था। कई लोगों को मौत की नींद सुला दिया था। देवी जैन धर्मिओं पर विशेष क्रुद्ध थी कारण कि वे उसके इच्छा की पूर्ति नहीं करते थे। अगर कोई साधु रात्री वहाँ स्थिर वास कर ले तो सताने में कोई कसर बाकी नहीं रखती थी। एक बार आचार्य श्री आर्य खपुट सूरि विहारकर उज्जयिनी की ओर आ रहे थे। आते-आते लगभग सूर्यास्त हो गया इसलिए उस उद्यान में ही रात्री वास करने का निश्चय किया। आचार्य श्री के भक्तामर स्तोत्र के तेईसवें श्लोक के जाप से खुश होकर उनको दुष्ट व्यन्तर साधने का उपाय चक्रेश्वरी ने दिया था। आचार्य श्री को वहाँ अशुभ संकेत मिलने लगे। अतः आवश्यक क्रियाओं से निवृत्त होकर भक्तामर स्तोत्र के तेईसवें श्लोक का जाप करने लगे। लगभग मध्य रात्री के समय वह दुष्ट देवी प्रकट हुई। अपने दुश्मन और वह भी जैन साधु को देखकर उसका चेहरा क्रोध से तमतमाने

लगा। प्रहार करने के लिए आचार्य श्री की ओर दौड़ी। समीप जाकर उसने सोचा इस दुष्ट साधु को तड़पा-तड़पाकर मारूँगी। सब से पहले वह सिंह का रूप कर दहाड़ने लगी। आचार्य श्री तो अपने ध्यान में मस्त थे। किसी भी प्रकार का आचार्य श्री में कोई डर न देखकर उसने हाथी, मगरमच्छ, आदि के भयंकर रूप दिखाये। किन्तु आचार्य श्री तो जरा भी विचलित नहीं हुए। अब तो उसके गुस्से का कोई पार नहीं रहा। उसने अब की बार राक्षस का विकराल स्वरूप बनाकर जोर-जोर से चिल्लाने लगी। लम्बा एवं काजल समान अत्यन्त काले रंग का शरीर, बाल बिखरे हुए, सूर्य समान लाल आँखें, उलटे पैर, गाय के सींग जैसे दो दांत, एक हाथ में तलवार एवं दूसरे हाथ में आदमी का मस्तक लिये हुए ऐसे राक्षस का रूप बनाकर चिल्लाती हुई आचार्य श्री की ओर बढ़ने लगी किन्तु सब विफल। आचार्य श्री की समता एवं नीड़रता से उसका कोप सातवें आसमान पर चढ़ गया। आवेश में उसने अपने हाथ का नख लम्बा एवं तीक्ष्ण बनाकर आचार्य श्री के गले में खूंच दिया। आचार्य श्री को तो इसके नख का असर कुछ नहीं हुआ किन्तु विपरीत वह चण्डिाका देवी चिल्लाने लगी। नख खूंचने का दाग उसके गाल पर उभर आया। दर्द के मारे करहाने लगी। आचार्य श्री के गले पर नख का जो वज्र प्रहार किया था उससे कई गुना अधिक नख खूंचने का दर्द उसके गाल पर हुआ था। अपने असली स्वरूप को प्रकटकर आचार्य श्री से अपने अपराध की क्षमा मांगकर उन्हें कोई भी वरदान मांगने के लिए कहा। आचार्य श्री ने आँखें खोलकर कहा - मुझे किसी की जरूरत नहीं। अगर तू वरदान देना ही चाहती है तो तुमको चढायी जाती हुई पशु की बली बन्द कर। बस यही मेरी इच्छा है। हिंसा से तू स्वयं को एवं तुम्हें माननेवाले भक्तों को भी दुर्गति की ओर धकेल रही है। जीवहिंसा कर कोई जीव सुखी नहीं हो सकता। तू लोगों को सता रही है यह भी अत्यन्त विपरीत है। उन्हें दुःख देने का तुझे क्या अधिकार है? उनका जीवन उन्हें शांति से जीने दो। पशुवध एवं नर हत्या से तेरी यह आत्मा अत्यन्त भारी बन चूकी है। इसलिए दुर्गति के अलावा कोई स्थान नहीं है। अभी भी मेरा कहना मान और छोड़ दे यह जीव हिंसा और अपने पापों का पश्चात्ताप कर जिससे कर्मग्रन्थि शिथिल बन जायगी। चण्डिका देवी ने सोचा अहो कैसे निस्स्पृही है ये। इनको वरदान दिया किन्तु ये अपने लिए कुछ नहीं किन्तु दूसरों के लिए माँग रहे हैं। मुझ जैसी अपकारिणी पर भी हितोपदेश देकर उपकार कर रहे हैं। धन्य है इनकी महानता। आज तक मैंने कितना ही विपरीत किया। उसने आचार्य के समक्ष स्वीकार किया कि आज के बाद वह न किसी व्यक्ति

को सतायेगी और न जीव वध करायेगी। देवी ने आजूबाजू का वातावरण एकदम शुद्ध कर दिया। हड्डी, मांस, खून आदि सब वहाँ से गायब कर दिये। अपनी विकराल मूर्ति का स्वरूप शान्त स्वरूपवाली बना दिया। उद्यान का दृश्य पहले से भी अत्यन्त सुन्दर बना दिया। इतने में सूर्योदय हो गया। लोग उद्यान की ओर आने लगे। वहाँ के महकते एवं मनोहर वातावरण को देखकर सब चकित हो गये। नन्दनवन के समान प्रतीत हो रहा था वह उपवन। बात पूरे नगर में फैल गयी। सब लोग नगर से उद्यान में दौड़ते आये। विकराल चण्डिका देवी का स्वरूप प्रशमरस में परिवर्तित देखकर सबने नमन किया। सब लोग उद्यान की शोभा निहालने लगे। इतने में चण्डिका देवी साक्षात् प्रकट हुई। उसने घोषणा कि - आज के बाद यहाँ कोई बली नहीं चढ़ायी जायगी और न ही अब मैं किसी को सताऊँगी। हर कोई व्यक्ति निर्भय होकर इस उपवन का उपयोग कर सकता है। मेरी ओर से सबको अभय है। पूर्व में मेरे द्वारा कृत हीन कार्यों की भी मैं क्षमायाचना मांगती हूँ। मेरे हृदय परिवर्तन का कारण यहाँ विराजित उपकारी श्री आर्य खपुट सूरिजी हैं। मैं आजीवन इनकी ऋणी रहूँगी। इन्होंने ही मुझे सम्यग् ज्ञान दिया है कहकर आचार्य श्री को प्रणाम किया। सबने आचार्य श्री की ओर देखा। उनके देदीप्यमान, तेजस्वी, चहरे को देखकर सबने नतमस्तक होकर प्रणाम किये। आचार्य श्री अब नगर में प्रवेश करने के लिए उद्यत हुए। देवी एवं सब लोग भी उनकी जयजयकार करते हुए उनके साथ चले। नगर द्वार पर देवी ने आचार्य श्री को प्रणामकर जाने की आज्ञा मांगी। आचार्य श्री ने सहर्ष आज्ञा दे दी। उनकी स्तुतिकर देवी अदृश्य हो गयी। दूसरे सब नागरिकों ने धाम-धूमपूर्वक नगर प्रवेश कराया। बात राजा के कानों तक भी पहुँच चूकी थी। वह भी अन्तःपुर सहित उनके दर्शनार्थ आया। जैनधर्म की प्रशंसा सुनकर श्रावक सङ्घ फूला नहीं समा रहा था। आचार्य श्री उपाश्रय में पहुँचे। वहाँ संसार सागर से निस्तार करानेवाली ऐसी जीवदया की महत्ता समझायी। देशना सुनकर हिंस्र लोग अपने कार्यों पर पछतावा करने लगे एवं आजीवन पंचेन्द्रिय वध न करने का नियम लिया। जैनधर्म की अत्यन्त प्रभावना हुई।

प्रश्न : शब्दों के तीन प्रकार कौन से?

व्यंजक = जिस शब्द के अनेक अर्थ हो वह व्यंग शब्द, लक्षक = कुछ संबंध युक्त अर्थ हो, वाचक = स्फूट अर्थ हो वैसा शब्द।

चतुर्विंशतितम श्लोक : त्वामव्ययं...

भावार्थ : सत्पुरुष आपको अव्यय, विभु, अचिन्त्य, असंख्य, प्रथम, ब्रह्म स्वरूप, ईश्वर रूप, अनंत, कामदेव को नाश करने में केतु समान, योगीश्वर, योगज्ञ, अनेक, अद्वितीय, ज्ञानस्वरूप (और) पाप रूप मल रहित कहते हैं।

पञ्चविंशतितम श्लोक : बुद्धस्त्वमेव...

भावार्थ : हे देवों से पूजित! पदार्थों में वृद्धि का प्रकाश करने से आप ही बुद्ध नामक देव हो, तीन भुवन के प्राणिओं के सुख करने वाले होने से आप ही शंकर हो। हे धीर! मोक्षमार्ग की विधि को बताने से धाता (ब्रह्मा) आप ही हो। (तथा) हे भगवान! आप ही प्रकट रीति से पुरुषोत्तम (विष्णु) हो।

चतुर्विंशतितम एवं पञ्चविंशतितम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथाः

शौर्यपुर नगर में जीतशत्रु राजा राज्य करता था। उसने कई संग्रामों में शत्रुओं पर स्वयं के भुजाबल से विजय प्राप्तकर अपना नाम सार्थक किया था। जीतशत्रु के प्रचण्ड भुजाबल के सामने शत्रुओं के पैर क्षणभर भी टिकने के लिए समर्थ नहीं थे। गर्व उन्नत राजाओं के गर्व को चकना-चूरकर अपने दास बनाये थे। उसकी कीर्ति दूर-दूर तक फैली हुई थी। वह न्यायनिष्ठ एवं विलासी था। उसके अन्तःपुर में रम्भा, उर्वशी, मेनका जैसी अप्सराओं के रूप को पराभव करनेवाली बहोत्तर रानियाँ थी। उसका सौभाग्य इन्द्र के सौभाग्य का भी परिहास कर रहा था। नित्य क्रीडा में रत। आजू-बाजू के सब शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने से वह अत्यन्त निश्चिन्त आमोद-प्रमोद में आकण्ठ डूबा रहता था। रानियाँ भी उसे खुश करने में कोई कसर बाकी नहीं रखती थी। नयी-नयी क्रीड़ाओं के लिए कभी समुद्र तट पर तो कभी सरोवर, वन, चित्रशाला, आदि में रानियों के साथ गमन करता था। एक दिन सभी रानियों के साथ नगर के बाहर रहे हुए मनोहर उद्यान में क्रीडा करने का विचारकर सेवकों को वहाँ साफ-सफाई की आज्ञा दी। नगर में घोषणा की गयी कि आज शाम राजा अन्तःपुर सहित सूर्य उद्यान में क्रीडा करने के लिए जायेंगे। इसलिए वहाँ आज शाम कोई न जाय। अगर वहाँ व्यक्ति पाया गया, तो उसे मृत्युदंड की सजा दी जायगी। पटह पूरे नगर में बजा। दोपहर से ही लोगों का आना-जाना उस उद्यान में बन्द हो गया। शाम को सज-धजकर हाथी पर सवार होकर अपनी बहोत्तर रानियों के साथ उद्यान की ओर प्रस्थान किया। शाम ढलने को आयी थी। इधर उद्यान में अत्यन्त साफ-सफाई एवं शून्य स्थान देखकर शाम के समय घूमने निकले भूत के समूह ने वहीं मनोरञ्जन करने का मन बना लिया। भूत

अदृश्य ही सब प्रकार की क्रीडा में मस्त थे। इतने में राजा की सवारी वहाँ पहुँची। राजा भी रानियों के साथ हसी-मजाक करता हुआ क्रीड़ा में रत था। घूमते-घूमते वे सभी उस स्थान पर पहुँच गये जहाँ भूत मौज-मस्ती मना रहे थे। अचानक उन रानियों के रूप, श्रृंगार, वस्त्र, अलंकार आदि देखकर सभी भूतों ने उनके शरीर में प्रवेश कर डाला। उनको कुतूहल एवं क्रीड़ा का मनोहर साधन मिल गया। सभी रानियाँ बेभान होकर गिर पड़ी। राजा यह देखकर घबरा गया। वह तुरन्त उन सब को रथ में डालकर राजमहल में ले आया। सभी निश्चेष्ट वैसी की वैसी स्थिति में पड़ी रही। राजा ने बौद्ध, शैव, वैशिषक, सांख्य, वैदिक आदि धर्म के पण्डित, तान्त्रिक, मान्त्रिक, वैद्य आदि को बुलवाकर उन सबको रानियों को ठीक करने की विनती की। तन्त्र, मन्त्र, होम, हवन, औषधि आदि सब चालू किये किन्तु सर्व सर्वथा विफल हुएँ। रानियों की तबीयत में रत्ती भर भी फर्क नहीं पड़ा। राजा ने वैदेशिक महामान्त्रिकों को भी आमन्त्रित किया किन्तु वे भी अपना प्रभाव दिखाने में असमर्थ रहे। रानियों का बदन एवं राजमहल रक्षा पोटली, यन्त्र आदि से भर गया। अब राजा भी अपने पर का विश्वास गुमा बैठा। उसने भी हार मानकर गम से खाना-पीना सब छोड़ दिया। शून्य मनस्क रहने लगा। इधर महान आचार्य, विद्याभण्डार, अनेक स्तोत्रो के निर्माता श्री शान्तिसूरि शौर्यपुर में पधारे। अनेक भव्य जनों को प्रतिबोधित कर रहे थे। आचार्य श्री भक्तामर स्तव के चौवीसवें एवं पच्चीसवें श्लोक के जाप से चक्रेश्वरी देवी को सिद्ध कर महाशक्तिओं के स्वामी बने थे। नित्य रात्री के समय भक्तामर का स्मरण करते थे। एक दिन उन्होंने किसी श्रावक से पूछा यहाँ प्रवचन में लोग कम आते हैं। एवं सब लोग उदास भी दिखायी देते हैं। इसका कारण क्या है? उस श्रावक ने अन्तःपुर की एवं राजा की स्थिति का बयान किया। लगभग एक मास व्यतीत हो गया किन्तु रानियों की स्थिति में कोई फेरफार दिखायी नहीं देता। इस गम में राजा ने भी खान-पान छोड़ दिया है। वे भी शक्तिहीन हो गये हैं। इस बात की खबर पड़ोसी राजा को लग गयी है। अब वह भी इस नगर पर मौका देखकर आक्रमण करने की फिराक में है। चारों ओर जानहानि एवं मालहानि का खतरा मंडरा रहा है। शोक एवं भय के कारण प्रजा भी निरुत्साह एवं उदास हो गयी है। हकीकत जानकर उस श्रावक को आचार्य श्री ने विदा किया एवं सोचने लगे कि मेरे आने की खबर राजा को भले ही हुई हो अथवा नहीं किन्तु इस दुःख के कारण सब ओर से थककर पुरुषार्थ हीन हो गया है। अन्यथा मेरे आने की खबर पड़ते ही राजा मुझसे मिलने जरूर आता। राजा को अब किसी भी मन्त्र,

तन्त्र, यन्त्र, औषधि पर विश्वास नहीं रहा है। अब मुझे ही कुछ करना पड़ेगा। जैन धर्म की प्रभावना करने का यह उत्तम अवसर है। किन्तु बिना बुलाये महेमान बनना भी ठीक नहीं। जैन साधु का आचार ही है कि आदर-सत्कार एवं आमन्त्रण-निमन्त्रण के बिना वह किसी चक्रवर्ती के महल में भी कदम नहीं रखता। इस साधु वेश की भी बेइज्जती न हो इसलिए अवधूत का वेश धारणकर राजा के यहाँ जाऊँ। इस प्रकार विचारकर रात के समय भक्तामर के चौवीस एवं पच्चीसवें श्लोक का जापकर सुबह होते ही अवधूत का वेश धारणकर सीधे राजमहल के पास पहुँचे। राजा झरोखे में निश्चेष्ट बैठा हुआ था। राजमहल के समीप पहुँचकर घूमते-फिरते बोलने लगे-यह परदेशी अवधूत किसी भी भूत, पिशाच, राक्षस आदि को भगाकर ग्लान एवं रोगी को नीरोगी एवं निर्दोष करने में समर्थ है। जोर-जोर से घोषणा करते हुए आचार्य श्री अवधूत के वेष में इधर-उधर घूम रहे थे। अचानक शब्द राजा के कानों से टकराये। उसे अब कोई विश्वास नहीं रहा था किसी पर, किन्तु आचार्य श्री के पुण्य ने उसे राजमहल से नीचे आने के लिए विवश कर दिया। राजा सीड़ियों से भागकर नीचे आया और आदरपूर्वक राजमहल में प्रवेश करने का आग्रह किया। अन्दर ले जाकर स्वर्ण सिंहासन पर उनको बिठाया। अवधूत ने पूछा, बोल क्या तकलीफ है तुझे? उसने जवाब दिया मुझे कोई तकलीफ नहीं किन्तु रानियाँ एक महिने से बीमार हैं कहकर पूरी आप बिती सुनायी। अवधूत ने कहा - चल मेरे साथ और मुझे उनका शरीर दिखा। राजा अवधूत को रानियों के कमरे में ले गया। सब से पहले अवधूत ने रानियों की देह पर रहे हुए धागे-यन्त्र-मणि-औषधि आदि सेवकों को कहकर दूर करवाये। उसके बाद पानी लाने को कहा। पानी लेकर उसमें अपने पैर धोकर राजा को देकर कहा इस पानी का सिञ्चन रानियों पर करो। प्रसन्न मुद्रा में उसने पानी लेकर रानियों पर जैसे ही सिञ्चा वैसे ही वे सभी दुष्ट व्यन्तर डर के मारे भाग गये। रानियाँ अंगड़ाई लेती हुई बैठी मानो अभी ही नींद से उठी हों। यह देखकर राजा की खुशी की कोई सीमा नहीं रही। अवधूत के चरणों में गिरकर, जो इच्छा हो वह मांगने को कहा। आचार्य श्री ने अपना असली स्वरूप प्रकटकर कहा - हम तो निस्स्पूही एवं निर्ग्रन्थ हैं। हमे किसी वस्तु की कोई आवश्यकता नहीं। उसके बाद आचार्य श्रीने सभी रानियों को एवं राजा को कर्म सिद्धान्त समझाकर उन्हें जैन धर्म के प्रति आदरवाला बनाया। बहुत से नागरिकों ने भी धर्म का साक्षात् प्रभाव देखकर जैन धर्म स्वीकारा। राजा एवं रानियों ने बारह व्रत एवं पञ्चमी तपादि विविध प्रकार के अनुष्ठान अंगीकार किये। ऊँचे तोरणवाले जिन मंदिरों का निर्माण कराकर जैन धर्म की सुवास चारों और फैलायी।

षड्विंशतितम श्लोक : तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्ति...

भावार्थ : हे नाथ! तीन जगत के जीवों की पीडा को हरनेवाले आपको नमस्कार हो। पृथ्वी तल के निर्मल आभूषण ऐसे आपको नमस्कार हो। तीन जगत के परमेश्वर ऐसे आपको नमस्कार हो। तथा हे जिनेश्वर! संसार रूपी समुद्र का शोषण करनेवाले आपको नमस्कार हो।

षड्विंशतितम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा :

पाटण नगर में श्रीमाल वंश में उत्पन्न एक दरिद्र वणिक् रहता था। बडी मुश्कील से आजीविका का गुजारा होता था। वह शिर पर चने की पोटली उठाकर नगर के आजूबाजू के गाँवों में घूमता हुआ चने बेचता और उसकी कमाई से अपना जीवनरूपी रथ चलाता था। चने का विक्रय करने से उसका नाम भी 'चनिक' पड़ गया था। दरिद्री को सुख कहाँ से? सुबह उठते ही मजदूरी में लगना एवं रात को सोते समय अगले दिन की आजीविका की चिन्ता। मौज-शौक उसके जीवन में केवल ख्वाब बनकर रह जाते हैं। सुबह से लेकर शाम तक काम से फुरसत ही नहीं मिलती। केवल अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण जीवन लक्ष रहता है। धर्म तो उसके लिए एक लम्बी मंजील है जो शायद ही तय कर सके। इस चनिक के हालात भी कुछ ऐसे ही थे। न कभी जीवन में चैन और न ही आराम। सुबह से लेकर शाम तक चने बेचने के धंधे के अलावा कुछ नहीं। एक बार आजू-बाजू के गाँवों में चने बेचते जाते समय मार्ग में आचार्य श्री उद्योतन सूरिजी मिले। भाग्य के परिवर्तन के समय व्यक्ति की बुद्धि स्वयं ही स्फुरायमान होती है। उसने आचार्य श्री को देखते ही अत्यन्त हर्ष से प्रणाम किया। चनिक के भाग्य ने भी गम्भीर आचार्य श्री को रुकने के लिए मजबूर कर दिया। धर्मलाभ की आशिष देकर पूछा - धर्म का निर्वाह तो अच्छा हो रहा है? चनिक ने जवाब दिया - गुरुवर्य! जीवन केवल इन चनों को बेचने में ही बिता है। दरिद्री के जीवन में भला धर्म कहाँ से? वह सर्वत्र पराभव का स्थान बनता है। न जाने कितनी आफतों का सामना करना पड़ता है उसे। मुसाफिरी समान वृद्धावस्था नहीं, मरण समान भय नहीं, क्षुधा समान वेदना नहीं और दारिद्र्य समान पराभव नहीं। आचार्य श्री फिर से बोले - तुम जो कहते हो वह बिलकुल बराबर है। किन्तु भविष्य की भी तुम्हें विचारणा करनी चाहिए। पूर्वभव में तुमने धर्म नहीं किया उसका परिणाम तुम वर्तमान में भोग रहे हो। अगर यहाँ भी धर्म नहीं करोगे तो इस आत्मा की दशा इससे भी भावी में ख्राब हो जायगी। यह जीवन तो लगभग सित्तर-अस्सी वर्ष उम्र तक का ही सीमित है। और उसमें किसी

कारण व्यक्ति की मृत्यु पांच, दस वर्ष अथवा इससे भी कम उम्र में पूरी हो सकती है और आगे विकराल अनन्त काल एवं अनन्त भव पड़े हैं। उसमें इस जीव का क्या होगा? इसलिए किसी भी परिस्थिति में व्यक्ति को धर्म करना चाहिए। क्योंकि धर्म से ही धन मिलता है एवं धन से ही समस्त इच्छित एवं इच्छित से इन्द्रिय उत्पन्न सुख मिलता है और परंपरा से मोक्ष मिलता है।

चनिक बोला - आप जो कह रहे हैं वह यथार्थ है किन्तु मेरे लायक धर्म का कोई सरलतम उपाय हो तो बताईए। पैसे व्यय करना तो मेरे बस की बात नहीं किन्तु आप दूसरा कोई मार्ग बताये तो दृढ़तापूर्वक एवं स्खलनारहित उसका प्रतिपालन करुंगा। आचार्य श्री ने कहा मैं तुम्हें भक्तामर का छब्बीसवाँ श्लोक तुभ्यं... वह सिखाता हूँ। उस श्लोक से पञ्चासर पार्श्वनाथ के आगे वारंवार स्तुति कर प्रणाम करना। नमस्कार महामंत्र का एक सो आठ बार जाप करना। शक्ति अनुसार तप-त्याग करना। ब्रह्मचर्य का पालन करना एवं परदारा स्त्री को माँ और बहन समझना। चक्रेश्वरी मन्त्र का जाप करना। उस चनिक ने कहा - आप जो कह रहे हैं उसका मैं पूरी तरह से पालन करुंगा। यह मेरे लिए सरल है। गुरुदेव को वारंवार नमस्कार कर वहाँ से चने बेचने के लिए आगे बढ़ा। उसके हर्ष की कोई सीमा नहीं थी। गुरुदेव की सौम्य मुखाकृति उसके सामने तैर रही थी। उनकी उपकारता एवं सरलता को याद करता आगे बढ़ा। अब वह प्रतिदिन गुरुदेव की कही विधि अनुसार शुद्ध धर्म का पालन करने लगा। प्रतिदिन तुभ्यं नमस्त्रिभवन... श्लोक पूर्वक वारंवार पञ्चासर पार्श्वनाथ को नमन करता, नमस्कार महामंत्र का जाप एवं चने बेचने के लिए गांव की ओर जाते और आते समय बीच मार्ग में चक्रेश्वरी का एक मंदिर था। प्रतिदिन उस मंदिर में चक्रेश्वरी को नमस्कारकर उसका जाप करता था। इस प्रकार छ मास व्यतीत हो गये। एक दिन गांव से चने बेचकर लौटते समय उस मंदिर के पास आया। चक्रेश्वरी को नमन किया। इतने में उसके कानों में घूंघरू की मधुर झंकार पडी। एक स्त्री उस मंदिर में से बाहर निकलकर चनिक की ओर प्रीति से देखने लगी। अत्यन्त स्वरूपवती, दिव्य वस्त्र, आभूषण धारण किये हुए, कुङ्कुम आदि से शरीर शोभायमान, अप्सरा के समान उस स्त्री ने हास्य एवं रागपूर्वक चनिक की ओर देखा। किन्तु चनिक उसकी और जरा भी ध्यान दिये बिना चक्रेश्वरी को प्रणाम करने लगा। उस स्त्री ने पूछा - हे मुसाफीर! क्या कर रहा है? चनिक ने उत्तर दिया - दिखायी नहीं देता कि मैं चक्रेश्वरी को नमन कर रहा हूँ। स्त्री बोली - साक्षात् तेरे सामने देवांगना समान स्त्री खड़ी है उसे छोडकर तू

पत्थर की मूर्ति की ओर देख रहा है। मैं तेरी सारी इच्छाएँ पूर्ण कर देती हूँ। मुझे स्वीकार कर भोगों को भोग और अपनी इस दुःस्थिति को त्यज। व्यर्थ में इस जवानी में अपने शरीर की यह क्या हालत बना रखी है? मुझ स्वयंवरा का तू अङ्गीकार कर। चनिक ने कहा - मजाक में भी फिर कभी ऐसा मत कहना। मेरे लिए परस्त्री माँ एवं बहन समान है। उस स्त्री ने फिर से हाव-भाव दिखाकर कटाक्ष से चल-विचल करने का प्रयत्न किया किन्तु वह अपने नियम पर अडीग रहा। जरा-सा भी विचलित न देखकर उस स्त्री ने अपना असली स्वरूप प्रकटकर कहा मैं महालक्ष्मी देवी हूँ। चक्रेश्वरी देवी मेरी सखी है। उसने तेरे नियम की दृढ़ता की प्रशंसा की जिससे तेरी परीक्षा करने के लिए मैं यहाँ आयी हूँ। तुझे नियम में अत्यंत दृढ़ देखकर तुम्हारे पर खुश हुई हूँ जो माँगना हो वह वरदान मांग। चनिक बोला - मेरा दारिद्र दूर करो। महालक्ष्मी ने कहा - आज शाम तक चने की कोठियाँ भरकर रखना वे सब चने सुबह तक सोने के हो जायेंगे कहकर देवी अदृश्य हो गयी। घर जाकर तीन कोठियाँ चनों से भरी। सुबह तक वे सब चने स्वर्ण के हो गये। सोने के चने की एक थाली भरकर राजा भीमदेव के दरबार में जाकर भेंट दी। राजा ने पूछा - अरे! चने स्वर्ण के कैसे हो सकते हैं? उसने पूरा इतिहास कहा। राजा ने खुश होकर उन स्वर्ण चनों का निस्संकोच उपभोग करने को कहा एवं घर बनाने के लिए भूमि उपलब्ध करवायी। चनिक ने सुन्दर घर का निर्माण करवाया। चक्रेश्वरी देवी से युक्त ऐसे आदिनाथ के महाप्रासाद का निर्माण करवाया। चक्रेश्वरी मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया। अनेक तीर्थयात्रा विशेषकर शत्रुञ्जय गिरिराज के संघ निकाले। अनेक दीन साधर्मिकों का दुःस्थिति से उद्धारकर उनके आजीविका का प्रबन्ध किया। नगर के अग्रिम श्रेष्ठिओं में चनिक का नाम भी चमकने लगा। पहले से भी भक्तिभाव में अधिक समय व्यतीत करने लगा। त्याग और भोग से युक्त जीवन यापनकर अन्त में सद्गति को प्राप्त करनेवाला हुआ।

प्रश्न : स्वजाति के पोषक और नाशक कौन कौन हैं?

पोषकाः स्वकूलस्यैते, काककायस्थकुर्कुटाः।
स्वकुलं घ्नन्ति चत्वारो, वणिक् श्वानो गजा द्विजाः॥

कौए, कायस्थ नर और कुर्कुट ये पोषक और वणिक्, श्वान, हाथी और ब्राह्मण ये स्वकुल नाशक हैं।

सप्तविंशतितम श्लोक : को विस्मयोऽत्र...

भावार्थ : हे मुनीश! दूसरी कहीं भी जगह न मिलने से संपूर्ण गुणों के द्वारा आप ही आश्रय किये गये हो। निश्चय से इसमें आश्चर्य क्या है? (क्योंकि) प्राप्त हुए अलग-अलग स्थानों से उत्पन्न हुए गर्ववाले दोषों के द्वारा आप स्वप्न में भी कभी देखे ही नहीं गये हो।

सप्तविंशतितम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा :

कल-कल बहती हुई गोदावरी नदी के समीप दक्षिण दिशा में वनराजि से शोभायमान, गुंजारव करते भंवरों से व्याप्त पुष्पों से महकते बगीचेवाला, पर्यटकों के लिए पर्यटन स्थल ऐसा प्रतिष्ठानपुर नामक नगर था। वहाँ त्यागी, तेजस्वी, यशस्वी, भोगी, गुणी, सत्यवादी ऐसा 'श्री हाल' नामक राजा राज्य करता था। संपूर्ण ऐश्वर्य का धनी भी कर्माधीन है। जीवन में कुछ न कुछ त्रुटि अवश्य रह जाती है। इसके जीवन में भी एक ऐसी ही त्रुटि थी जो उसको सताया करती थी। सभी बातों से पूर्ण होने पर भी अभी तक किसी संतान की प्राप्ति नहीं हुई थी। कई उपाय अजमाये किन्तु सब निष्फल। एक दिन राजपुरोहित ने राजा से कहा - एक महीने तक नित्य एक समय भोजन, ब्रह्मचर्यपालन, कुश के संथारे पर शयन एवं महादेव का जाप करने से अवश्य पुत्र की प्राप्ति होगी। पुरोहित के कथनानुसार राजा ने वह क्रिया भी की किन्तु सब पूर्ववत् विफल! और भी दूसरों ने जो कहा उसका भी प्रयोगकर देखा किन्तु उसका भी परिणाम शून्य में रहा। महंगी औषधियों का भी सेवन किया लेकीन सब उपायों की तरह उसके द्वारा भी कुछ फर्क नहीं पड़ा। अब तो राजा के उपायों की हद हो चूकी थी। भाग्य का खेल समझकर, राजा उन सब अजमाइश से परे हो गया। पूर्वकृत कर्म किसी का पीछा नहीं छोड़ते चाहे वह राजा हो या रङ्क इस प्रकार विचारकर राजा कुछ स्वस्थ हो जाता अपने गम से। इस प्रकार कई वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन महामन्त्री के साथ वह उद्यान में टहल रहा था। अचानक एक सौम्याकृति पर उन दोनों की नजर पड़ी। ये कोई और नहीं किन्तु महान जैन मुनि थे। जिन्होंने कई भव्यजन को प्रतिबोध देकर जैनधर्म के प्रति दृढ़ अनुरागी बनाया था और भक्तामर स्तोत्र के जाप से अनेक सिद्धियाँ जिनकी सेवा में आदेश के लिए हाजिर खडी थी। राजा प्रणामकर उनके समीप में बैठा। मुनि ने वैराग्यमयी देशना दी। अन्त में राजा ने पूछा मैंने पुत्र प्राप्ति के लिए लाख प्रयत्न किये किन्तु सब निष्फल रहे। क्या आप बता सकते हैं कि मेरे भाग्य में पुत्र का सुख देखने का सौभाग्य है या नहीं? मुनि ने अपने ज्ञानबल से एवं भावी लाभ का कारण

जानकर कहा - हाँ तुम्हारे जीवन में पुत्र प्राप्ति का सौभाग्य है। युगादिदेव के सामने चक्रेश्वरी देवी का मन में ध्यानकर भक्तामर स्तोत्र का पाठ करना जिससे प्रत्यक्ष हुई चक्रेश्वरी देवी तुम्हें पुत्र का वरदान देगी। राजा का तन रोमाञ्चित हुआ। उसकी दायी आंख फड़कने लगी। पक्षिओं के मधुर कलरव होने लगे जो शुभ का संकेत कर रहे थे। मुनि को बार-बार नमस्कारकर राजा वापस महल में लौटा। निश्चल आसन पर बैठकर अन्नपान का त्यागकर आदिदेव की प्रतिमा के सामने चक्रेश्वरी देवी का हृदय में न्यासकर एक तान होकर भक्तामर स्तोत्र का जाप करने लगा। जाप करते-करते तीसरे दिन जब भक्तामर के सत्ताईसवें श्लोक का जाप कर रहा था तब चक्रेश्वरी देवी ने प्रत्यक्ष होकर कहा - तेरे सामने रही हुई इस पुष्पमाला को लेकर अपनी पट्टरानी के गले में पहनाना जिससे अवश्य तेरा मनोरथ पूर्ण होगा। कहकर देवी अन्तर्लीन हो गयी। चक्रेश्वरी के वचन से मानों बादलों की आवाज से मयूर के समान उसकी खुशी का ठीकाना न रहा। देवी के अमोघ वचन अनुसार राजा ने वह पुष्पमाला अपनी प्रिया के गले में पहनायी। उस हार के प्रभाव से रानी गर्भवती बनी। उसे नित्य नये-नये मनोरथ उत्पन्न होने लगे। गर्भ के पुण्य प्रभाव से वह दान देने लगी, देवदर्शन, गुरुवन्दन आदि उत्पन्न दोहदों को पूर्ण करने लगी। और एक दिन शुभ समय पर पूर्व दिशा जैसे सूर्य को जन्म देती है वैसे ही देदीप्यमान पुत्र को जन्म दिया। सारे नगर में खुशी का वातावरण छा गया। अपूर्व महोत्सव मनाया गया। शुभ दिन पर श्री हाल नरेश ने जन्मे बालक का चक्रादास नाम रखा क्योंकि चक्रेश्वरी देवी के वरदान से उत्पन्न हुआ था। अब वह पुत्र धाव माताओं के द्वारा लालन-पालन कराता हुआ बढ़ने लगा। अपनी बाल चेष्टाओं से सबको आनन्दित करता था। एक दिन राजा नाव में बैठकर गोदावरी नदी में सैर कर रहा था कि अचानक उस पानी में से बड़ी मछली उछली और राजा को देखकर जोर से हंसकर वापस पानी में गायब हो गयी। राजा की समझ में कुछ नहीं आया कि मछली मुझे देखकर क्यों हसी? उसने ज्योतिषियों से मछली के हंसने का कारण पूछा - तब कोई ज्योतिषी उसे देश पर भयंकर आफत का संकेत बताने लगा तो कोई उसे अत्यन्त शुभ संकेत कहने लगा। सबकी बातों में विपर्यास देखकर राजा को संतोष नहीं हुआ। वह अब बेचैन रहने लगा। एक दिन उस नगर में जैन मुनि का पदार्पण हुआ। राजा ने मुनि के पास जाकर विधिपूर्वक प्रणामकर मुनि से मछली के हंसने का कारण पूछा। मुनि ने अपने ज्ञानबल से देखकर कहा - सुनो राजन्! पूर्व भव में तुम कठीयारे थे और तुम्हारा नाम था धन। तुम्हारा एक

कठीयारा मित्र था जिसका नाम था निर्धन। तुम दोनों प्रतिदिन जंगल में काष्ट के लिए जाते और बड़ी मुश्कील से पूरे दिन भर मजदूरी कर अपनी आजीविका चलाते थे। जेठ महिने की कड़ी धूप में भी लकड़े काटने के लिए जंगल में जाना पड़ता था। तुम दोनों साथ में ही रहते-खाते-पीते-बैठते। सब कुछ साथ मिलकर करते। तेरा नाम धन होते हुए भी वास्तव में अपने मित्र के नाम के समान निर्धन ही था। बारिश में भी काष्ट के लिए वन में जाने के लिए मजबूर होना पड़ता था। इस प्रकार कई वर्ष बीत गये। एक दिन तुम दोनों वृक्ष काटकर मध्याह्न के समय जैसे ही भोजन के लिए बैठे वैसे ही तुम दोनों की नजर तुमसे थोड़ी दूर पर काउस्सग्ग ध्यान में खड़े, मासक्षमण के तपस्वी ऐसे मुनिराज पर पड़ी। उनको देखकर तुम्हें अत्यन्त हर्ष हुआ। तुम सोचने लगे अहो! इस विरान वन में भी इस पुण्यात्मा के दर्शन हुए। धन्यभाग्य हमारे कि जिनका शरीर तप के प्रभाव से अत्यन्त शुष्क हो चूका है ऐसे तपस्वी महामुनि संसार की प्रपंच से बेखबर, आत्मोत्थान में मस्त, निर्मोही, विरक्त देव के दर्शन हुए। तुम इन विचारों में थे कि तुम्हारे मित्र निर्धन ने तुम्हें झकझोरकर कहा - क्यों मित्र कौन से विचारों में खोये हो? चल जल्दी से खाना शुरू कर बड़े जोरों की भूख लगी है। तुमने जवाब दिया - देख सामने महान तपस्वी मुनि खड़े हैं, चल आज अपन अपना खाना इन महामुनि को देकर अखूट पुण्य का उपार्जन कर लें। आज एक दिन नहीं खायेंगे तो कोई मर थोड़े ही जायेंगे? निर्धन बोला - नहीं। इतने कष्ट से तो यह एक वक्त का खाना नसीब होता है और उसमें भी तू कह रहा है कि दान कर दें इससे बडी बेवकूफी भला कौन सी होगी? तुमने बहुत समझाने की कोशिश की किन्तु तेरा मित्र नहीं माना। वह अपनी बात पर डँटा रहा। तब तुमने कहा - हम दोनों रोज एक थाली में साथ-साथ भोजन करते हैं किन्तु तुम आज ऐसा करो कि इस खाने के दो भाग कर दो मैं अपना भाग मुनि श्री को दान कर दूंगा और तुम अपना भाग खा लेना। दोनों ने मिलकर भोजन दो भाग में बांट दिया। तुमने अपना भोजन अत्यन्त उल्लासपूर्वक मुनि को वहोराया। मुनि ने निर्दोष जानकर उसे ग्रहण किया। वहीं उसी समय आये एक देव ने उस दान की अत्यन्त प्रशंसा की कि अहो धन्य है यह, जो महामुश्कील से प्राप्त भी यह भोजन स्वयं भूखा रहकर मासक्षमण के महान तपस्वी को अत्यन्त भक्तिभावपूर्वक वहोराकर पुण्यानुबन्धी पुण्य का उपार्जन कर रहा है। इधर तुम्हारे मित्र ने उस दान की मन ही मन अत्यन्त निन्दा की। अत्यन्त महेनत-मजदूरी से प्राप्त थोड़ा-सा यह भोजन भी इस बेवकूफ ने गुमा दिया। यह प्रत्यक्ष हानि ही दिखायी देती है इसमें भला लाभ

कैसा? इस प्रकार विचारकर हीन कर्म संचय किये। अहो यह आश्चर्य की बात है कि दारिद्र दोनों में समान होने पर भी चित्तवृत्ति में महदन्तर है। एक व्यक्ति कहता है कि अहो! अफसोस की बात है कि मैं दे नहीं सका इसमें मेरे कमभाग्य, और दूसरा कहता है कि मुझे वह वस्तु नहीं मिली। वहाँ से आयुष्य पूर्णकर उस दान के प्रभाव से तुम श्री हाल राजा हुए हो एवं वह निर्धन मित्र मरकर महामत्स्य बना है। तुम्हें देखकर चिरकाल की प्रीति से उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ और दान देते समय अनुमोदना करनेवाले उस साक्षी देव ने जब तुम नाव में थे तब उसे अत्यन्त हसाया था। सुपात्रदान के प्रभाव से तुम अधिक लक्ष्मी के स्वामी बने हो एवं उस दान की निन्दा करने से वह निर्धन दुर्गतिगामी बना। उसके हंसने के कारण तुम्हरे राज्य पर खतरे का कारण कोई नहीं है और न ही कोई शुभ का कारण है। किन्तु उसका मुख्य कारण यही है कि वह मत्स्य जातिस्मरण ज्ञान होने से तुम्हें यह बताना चाहता था कि दान के प्रभाव से तुम ऐश्वर्यवान् बने और उसकी अवहेलना करने से मनुष्यगति से भी च्युत होकर इस मत्स्य के रुप में मुझे उत्पन्न होना पडा। यह मेरा कमनसीब है। मुझे मेरी बेवकूफी पर ही हंसी आ रही है। फिर मुनि ने सुपात्रदान के फल को दर्शानेवाली सुन्दर देशना दी कि सुपात्रदान का फल विशाल एवं सुन्दर होता है और इस पृथ्वी पर नहीं देनेवाला रुप, सौभाग्य, सुख, आदि का भाजन नहीं होता। दान ही, महिमा का कारण, कुशलनिधान, कलङ्करूपी हाथी को भागने में सिंह समान, लक्ष्मी रूपी कोयल के लिए आम्र समान, सिद्धि रूपी वधू के सङ्गम में दूत समान है। इस प्रकार मुनि की देशना सुनकर श्री हाल नरेश एवं राजकुमार चक्रादास सद्मार्ग में और ज्यादा प्रवर्तित हुए। खुले हाथ दान देने लगे। श्री युगादिदेव के मंदिर का जीर्णोद्धार कराया। तीर्थयात्राएँ करवायी। अन्त में दोनों ने सुदीर्घकाल तक सुख एवं राज्यभोगकर निकट मोक्ष में जानेवाले होंगे।

प्रश्न : लक्ष्मी के पांच फल कौन से?

दानमौचित्यविज्ञानं, सत्पात्राणां परिग्रहः ।
सुकृतं सप्रभुत्वं च पञ्च प्रतिभुवः श्रियः ॥

दान, उचितता का विज्ञान, सत्पात्रों का संग्रह, सत्कृत्य और उत्तम प्रभुता ये पांचों लक्ष्मी के फल है।

अष्टाविंशतितम श्लोक : उच्चैरशोक...

भावार्थ : ऊँचे अशोक वृक्ष के आश्रय रहा हुआ अधिक किरणवाला (और) निर्मल ऐसा आपका शरीर, स्वच्छ रीति से देदीप्यमान किरणवाला (तथा) अंधकार के समूह का नाश करनेवाला (तथा) बादल के पास रहा हुआ सूर्य का बिम्ब जिस प्रकार शोभता है वैसे अत्यन्त शोभता है।

एकोनत्रिंशत्तम श्लोक : सिंहासने...

भावार्थ : रत्न की कान्ति के समूह से चित्र-विचित्र ऐसे सिंहासन ऊपर सुवर्ण समान उज्ज्वल आपका शरीर, आकाश में देदीप्यमान किरण रूप लता मण्डप को फैलानेवाला (तथा) ऊँचे उदयाचल पर्वत के शिखर ऊपर रहा हुआ सूर्य का बिम्ब जैसे शोभता है वैसे शोभता है।

त्रिंशत्तम श्लोक : कुन्दावदात...

भावार्थ : मोगरे के पुष्प समान उज्ज्वल (और) वींझाते दो चामरों द्वारा मनोहर शोभावाला सुवर्ण जैसा सुन्दर आपका शरीर, उदय होते हुए चन्द्र समान उज्ज्वल झरणे के जल की दो धारावाले सुवर्णमय मेरुगिरि का ऊँच शिखर जैसे शोभता है वैसे शोभते हैं।

एकत्रिंशत्तम श्लोक : छत्रत्रयं...

भावार्थ : चन्द्र जैसा मनोहर, ऊँचे आपके मस्तक पर रहा हुआ, सूर्य के किरणों के प्रताप को ढांकनेवाला, मोतिओं के समूह की रचना से वर्द्धित शोभावाला (तथा) तीन जगत के परमेश्वरपन को प्रसिद्ध करता ऐसा आपका छत्रत्रय शोभता है।

एकत्रिंशत्तम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा :

श्री सिंहपुर नामक नगर में एक गड़रिया रहता था। वर्ण से तो वह क्षत्रिय था किन्तु बचपन में ही इस क्रूर काल के द्वारा माता-पिता का साया छीने जाने से गायों को चराने के काम में लगना पड़ा था। हर दिन सुबह गायों को चराने के लिए वन में जाता और शाम को लौट आता। वह था दयालु इसलिए वनप्राणी भी उसके समीप नीड़रता से फिरते थे। हिरण आदि उसकी आँखों के आगे ही चरते एवं क्रीड़ा करते। वह उन्हें अति स्नेहिलता से लाड़-प्यार करता। एक घनघोर पेड़ की छाया में बैठकर बहती हुई नदी की ओर देखता सुन्दर बाँसुरी बजाता था। दोपहर के समय भोजनकर प्रकृति की गोद में निद्राधीन हो जाता। इस तरह कई वर्ष बीत गये। बचपन से उसके दिन उस वन में बीते थे। रास्ते, चीज, वृक्ष आदि उस वन की

प्रत्येक वस्तु के साथ चिर परिचय हो चूका था। वन के प्रति उसका प्रेम भी एकदम गाढ़ हो चूका था। कोई अदृष्ट भाग्य ही उसे बार-बार वहाँ जाने के लिए प्रेरित करता था। एक दिन उस जंगल में कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े हुए मुनिराज को देखकर उसके आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। मुनि के प्रशम भाव के प्रभाव से सिंह, हिरण, हाथी, सांप आदि सभी अहिंसक बनकर उनके समीप बैठे थे। एक दूसरे के कट्टर दुश्मन वनप्राणी भी आज साथ-साथ खेल रहे थे। यह दृश्य देखकर उसके मन में मुनिराज के प्रति अहोभाव बढ़ गया। समीप जाकर अष्टांग प्रणामकर उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद मुनिवर ने कायोत्सर्ग पूर्णकर अपनी अमिभरी दृष्टि उस पर ड़ाली। उसे अत्यन्त सरल एवं ललाट प्रदेश के द्वारा भाग्योदय का समय परिपक्व जानकर उपदेश दिया कि घर में लक्ष्मी, वाणी में सरस्वंती, भुजाओं में शौर्य, हाथ के तलीये पर त्याग, हृदय में वृद्धि, शरीर पर सौभाग्य शोभा, दिशाओं में कीर्ति, गुणिजन में सपक्षता सब श्री धर्मलाभ का प्रभाव है और वह तुम्हारा हो। इस प्रकार धर्म आशिष दी।

गोपाल क्षत्रिय गुरु की देशना सुधारस के समान पान करने लगा। प्यासे के एक-एक बुंद पीने के समान एक-एक शब्द को ग्रहण करने लगा। जीवन में प्रथम बार कुछ विशेष एवं कुछ सत्य जानने को मिला था। अन्त में उसके बाह्य चिह्न से भाग्य सितारा चमकनेवाला है जानकर मुनिराज ने उससे कहा तुम्हारा दिन ऐसे ही बीत जाता है। इसलिए मैं तुम्हें नमस्कार महामंत्र एवं भक्तामर स्तव सिखाता हूँ। इसके स्मरण से पूर्व संचित दुष्ट कर्मों का नाश एवं भावी शुभ कर्मों का संचय होगा। नित्य त्रिकाल इसका स्मरण करना। इस प्रकार धर्मोपदेश देकर मुनि वापस ध्यान में लीन हुए। गोपाल क्षत्रिय दूर बैठा-बैठा उन्हें निहालता रहा। शाम को घर लौटने का समय हुआ। सभी गायों को इकट्ठाकर मुनि को फिर-फिर प्रणामकर मन में अत्यन्त हर्ष को धारण करता हुआ वापस लौटा। जब तक मुनि आँखों के सामने से ओझल नहीं हुए तब तक लौटते समय पीछे मुड़-मुड़कर देखता रहा। रात को सोते समय उसी वन का दृश्य उसकी दृष्टि के सामने तैर रहा था। मुनि की छवि बार-बार उभर रही थी। इस प्रकार रात उसी याद में बीती।

सुबह होते ही गायों को लेकर वापस उसी स्थान पर आया किन्तु मुनिवर वहाँ से विहार कर गये थे। उनके चरण चिह्न धूल में स्पष्ट दिखायी दे रहे थे। उसने उन्हीं चरणों को वन्दनकर उसकी धूल मस्तक पर लगायी। फिर नमस्कार महामंत्र एवं भक्तामर में लीन हो गया। इस प्रकार थोड़े दिन व्यतीत हुए। एक दिन उसने स्वप्न

में अष्ट प्रातिहार्य से युक्त श्री आदिदेव की भव्य प्रतिमा के दर्शन किये। स्वप्न देखकर उसकी आँखें खुल गयी। अभी रात्री शेष थी। स्वप्न के कारण उसके हर्ष का कोई पार न रहा। वह अब भक्तामर में लीन हो गया। शेष रात भक्तामर स्तव के स्मरण में व्यतीत की। सुबह होते ही गायों को लेकर वन की ओर चलने लगा कि अचानक उसके कानों में मेघ की गर्जना सुनायी दी। उसने नजर उठाकर आसमान की ओर देखा। पूरे गगन में घनघोर भ्रमर के समान काले बादल छाये हुए थे, बिजलियाँ चमक रही थी, स्पष्ट बरसात होने के चिह्न दिखायी दे रहे थे किन्तु गोपाल क्षत्रिय का मन स्वप्न के कारण अति पुलकित था। आज उसका मन उस मुनिवर के मिलनवाले स्थान के दर्शनार्थ लालायित था। किसी भी स्थिति में वहाँ जाने का मक्कम मन किया। और हृदय में असीम आनन्द को धारण करता हुआ वह वन में उस नदी के तट पर पहुँचा। वहाँ उस स्थान के दर्शनकर अति आनन्दित हुआ। हर रोज के समान उस घनघोर वृक्ष के नीचे बैठ गया। नदी कल-कल बह रही थी। बारिस शुरू हो गयी थी। नमस्कार महामन्त्र का स्मरण करता वन की शोभा निहाल रहा था। बारिस जोरों की हो रही थी। बरसात द्वारा धूल पानी में बह जाने से जमीन के अन्दर रही हुई एक चीज प्रकट हुई। गोपाल क्षत्रिय की नजर भी उस पर पड़ी। उसने देखा की दूर एक चीज चमक रही है। उसके कदम भर बरसात में भी तेजी से उसकी ओर बढ़े। पास जाकर देखा तो वह एक संगमरमर का पत्थर था। उस संगमरमर के पत्थर को देखकर उसका कुतूहल और बढ़ गया। अरे इस वन में ऐसा संगमरमर का पत्थर कैसे? नदी की बालू हाथों से दूर करने लगा। जब पूरी की पूरी रेत दूर कर दी तो उसकी आँखों को विश्वास नहीं हो रहा था। यह वही अष्ट प्रातिहार्य युक्त आदिनाथ की प्रतिमा थी जिसे रात को सपने में देखा था। उसकी खुशी का कोई ठिकाना न रहा। नदी तट पर पर्णकुटीर बनाकर उस मूर्ति को उसमें स्थापित कर दिया। अब निरन्तर भक्तामर स्तव का तीनों समय उसके सामने जाप करने लगा। अत्यन्त भक्तिभाव से एकाग्रता पूर्वक आदिनाथ की मूर्ति में अनिमेष दृष्टि स्थापितकर अस्खलित, शुद्ध उच्चारण एवं मधुर स्वर से भक्तामर स्तव को गाता। इस प्रकार छ मास व्यतीत हो गये। एक दिन भक्तामर स्तव के एकतीसवें श्लोक में लयलीन था। उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष हुई चक्रेश्वरी ने राज्य प्राप्ति का वरदान दिया। उसी दिन श्रीसिंहपुर नगर के संतान विहीन राजा की एकाएक मृत्यु हो गयी। राजा की अन्त्येष्टी कर मन्त्रिमण्डल नये राजा के चुनाव के लिए इकट्ठा हुआ। इधर मन्त्रणा जारी थी और उधर राजमहल में

मृत राजा के स्वजनों में कलह बढ़ गया। म्यान से तलवारें निकालकर सब आमने-सामने आ गये। सबको राजा बनने की अभीप्सा थी। एक कह रहा था कि राजा का निकटतम स्वजन मैं हूँ तो राजगद्दी पर मेरा अधिकार है। कोई कह रहा था कि मैं सबसे ज्यादा योग्य हूँ एवं महाराज का प्रियपात्र था। इस प्रकार वाद-विवादकर एक-दूसरे को यमसदन पहुँचाने के लिए शस्त्रास्त्र से समर के लिए सज्ज हुए। बात मन्त्रणा करनेवाले मन्त्रियों तक पहुँची। खून-खराबा रोकने के लिए तुरन्त राजमहल में दौड़ आये और उन सबको चेतावनी दी कि राजा का निर्णय मन्त्रिमण्डल एवं नगर के श्रेष्ठिजन मिलकर करेंगे। अगर इस बीच किसी ने कोई गड़बड़ या कोई चाल चली तो उसे कारागृह में डाल दिया जायगा। मन्त्री के वचन सुनकर कारागृह के डर से राजा के सभी स्वजन चूप बैठ गये। मन्त्री एवं नगर बहुमान्य श्रेष्ठिओं ने इकट्ठा होकर राजा के चुनाव के लिए पञ्चदिव्य प्रकट करने का आदेश दिया। मार्ग के दोनों बाजू लोगों की भीड़ जमा हुई थी। इस आशा में कि अगर भाग्य ने चाहा तो राजा मैं बन जाऊँगा। किन्तु पांच दिव्य तो सब लोगों को छोड़कर आगे बढ़ रहे थे। सबके मन में प्रश्न था कि इस विशाल राज्य के ऐश्वर्य उपभोग किसके नसीब में है? मन्त्री लोग सब पीछे पीछे चल रहे थे। नगर का मुख्य द्वार भी आ गया। लोग भी अब आगे दिखायी नहीं दे रहे थे। मन्त्रिगण सोचने लगा कि ये दिव्य सूनसान वन की ओर क्यों बढ़ रहे हैं। सब लोग भी पीछे पीछे चल रहे थे। वन में सर्वत्र घूम-घूमकर अन्त में गोपाल को राज्य दिया। स्वर्ण कलश के द्वारा पानी से अभिषेक किया गया। छत्र स्वयं उसके मस्तक के ऊपर स्थित हो गया। चामर द्वय स्वयं ढुलने लगे। घोड़े ने हेषारव किया एवं हाथी ने सूंड से उठाकर उसे अपनी पीठ पर बिठाया। सबने जयकार किया। गोपाल गजारूढ होकर नगर में आया। सबने मिलकर उसका नाम 'देवदत्त' रखा। मन्त्रिगण एवं दास-दासी उसकी सेवा में हाजिर खड़े थे। अब वह राज्य का परिपालन करने लगा। थोड़े दिन बाद सीमावर्ती राजाओं के पास खबर पहुँची कि एक गोपाल श्रीसिंहपुर का राजा बन गया है। सब राजा उसे तिरस्कार भरी दृष्टि से देखने लगे। सबको उसका राजा बनना असह्य हो गया। सब राजाओं ने मिलकर विचार किया कि एक नीचकुल उत्पन्न गोपाल राजा बन गया है। यह अपमान की बात है। चलो जल्दी उस नगर पर आक्रमणकर उसका पत्ता हमेशा-हमेशा के लिए साफ कर दें। सबने मिलकर श्रीसिंहपुर नगर को घेर डाला। मन्त्री भी अचानक आयी इतनी बड़ी आफत से घबरा गये। इतनी विशाल सेना का सामना करना उनके बस की बात नहीं थी। नगर में बातें होने लगी कि

एक गड़रिये को राजा बनाया उसका ही यह परिणाम है। अब दुश्मन नगर का दरवाजा तोड़कर नगर में प्रवेश करेंगे और नगर का छप्पा-छप्पा छानकर नगर लूंट लेंगे। देवदत्त राजा भी विचार में पड़ा। उसे तत्क्षण चक्रेश्वरी देवी याद आयी। सोचा यदि देवी ने राज्य दिया है तो इस पर घिरे संकटों के बादलों को भी वही दूर करेगी। इस प्रकार विचारकर भक्तामर स्तव का पाठ करने लगा। देवी प्रत्यक्ष हुई। देवदत्त ने कहा - मैं तो उस जंगल में ही खुश था। और मेरा दिन भी भक्तिभाव में व्यतीत होता था। अब हर दिन कोई न कोई मुसीबत खड़ी हो जाती है। कभी अपनो की चिन्ता तो कभी दुश्मनों की। इस नगर पर दुश्मन धावा बोलने जा रहे हैं अब आप ही इसका कुछ निराकरण कीजिए। देवी ने कहा - तुम चिन्ता मत करो। आज के बाद कोई नया झमेला खड़ा नहीं होगा। अब तुम आनन्द से राज्य का संचालन करोंगे कहकर देवी विलीन हुई। उसने नगरी के बाहर खड़ी शत्रु राजा सहित पूरी सेना को मानो पत्थर की मूर्ति हो अथवा कागज पर बनाया चित्र या मिट्टी का पुतला हो वैसे सबको स्तम्भित कर दिया। **बलवान के संयोग से क्या नहीं होता? बलहीन भी अतुल बल का स्वामी बन जाता है।** देवी के प्रभाव से सभी सामन्त राजा डर गये। सबको देवदत्त की आज्ञा स्वीकार करवाकर देवी अपने स्थान पर लौट गयी। सब सामन्त राजा ने देवदत्त से क्षमा मांगकर उसकी आज्ञा शिरोधार्य-कर वापस अपने नगर में लौटने की आज्ञा मांगी। उन प्रतिकूल राजाओं को भी देवदत्त ने प्रसन्न होकर शीघ्र क्षमा दे दी। **निर्गुण प्राणिओं पर भी सज्जन लोग दया करते हैं। चन्द्र भी चण्डाल के घरों पर अपनी ज्योत्सना बिखेरता है। जलाया जाता हुआ चन्दन भी अपनी सौरभ नहीं छोड़ता।** उन राजाओं का यथायोग्य सत्कारकर अपने-अपने नगर की ओर विदा किया। अब उसके दिन बड़े आनन्दपूर्वक बितने लगे। श्री आदिनाथ के भव्य जिनालय का निर्माण करवाया और उसमें वनप्राप्त प्रतिमा को स्थापन कराया। चिरकाल तक राज्य भोगकर अन्त में स्वर्गगामी हुआ।

प्रश्न : अजैनों में पुरुष का भव न मिलने के कारण कौन से?

पंक्तिभेदी वृथापाकी, नित्यं दर्शन निन्दकः ।
मृतशय्या प्रतिग्राही, न भूयः पुरुषो भवेत् ॥

पीरसने के समय पंक्ति भेद करनेवाला, निरर्थक रांधनेवाला, स्वधर्म का नित्य निंदक और मृतक का वस्त्र लेनेवाला मरकर पुरुषभव नहीं पा सकता।

त्रयस्त्रिंशत्तम श्लोक : इत्थं यथा...

भावार्थ : हे जिनेन्द्र! इस प्रकार धर्म के उपदेश की विधि में जैसी आपकी अतिशय रूप समृद्धि थी, वैसी दूसरों की (हरिहरादि) नहीं थी (क्योंकि) अन्धकार को नष्ट करनेवाली सूर्य की कान्ति जैसी है वैसी कान्ति विकस्वर भी ऐसे ग्रहों के समूह की कहाँ से हो?

त्रयस्त्रिंशत्तम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा :

श्री गुजरात देश में श्री धोलका नगर में श्री श्रीमाल वंश रूपी गगन में चन्द्र समान पाहा का पुत्र जिनभा नामक श्रावक रहता था। वह द्रव्य से दरिद्र था किन्तु भाव से अमीर था। घी के डिब्बे, कपास, धान्य के बस्ते इधर से उधर वहनकर उससे मिली मजदूरी से अपनी आजीविका चलाता था। इतनी महेनत से जीवन व्यवहार चलते हुए भी धर्मशाला में रहे हुए गुरुदेव के दर्शन अचूक करता था। उनकी अमृतवाणी का पान जरूर करता था। एक बार अपने गुरु श्री अभयदेवसूरिजी पधारे। उनको वन्दन करने के लिए धर्मशाला में गया। गुरु को वन्दन किये। गुरु ने धर्मलाभ की आशिष दी और कहा - जिनेश्वर भगवन्त के दर्शन, वन्दन आदि से संचित पुण्य जिनके पास है उनका लक्ष्मी कभी त्याग नहीं करती और आजीवन दासी के समान आचरण करती है। इसलिए जिनेश्वर की भक्ति भव्यातिभव्य करनी चाहिए। जिनभा ने कहा - गुरुदेव आपने जो बात कही वह बिलकुल (सर्वथा) सत्य है किन्तु अपना पेट भरने में भी असमर्थ ऐसे दरिद्री की कैसी धर्मक्रिया। धर्मक्रिया के लिए धन एवं समय दोनों की जरूरत पड़ती है। दरिद्री के जीवन में इन दोनों का अभाव होता है। इस प्रकार कहने पर श्री अभयदेव सूरि ने विचारकर कहा - मंदिर में से पट्टाकोश पर स्थित श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमा जो चक्रेश्वरी की मूर्ति से सेवित है वह दिलाता हूँ। उसकी तुम भक्तिभाव से पूजन, वन्दन, दर्शन आदि करना। यह मूर्ति दिन-रात तुम्हारे घर पर रहेगी। जब भी समय की अनुकूलता मिले तब अपने घर पर ही उसकी भक्ति करना। तुम्हारी उत्कट भावना देखकर मेरी भी यह इच्छा हुई कि तुम जैसा दृढ़धर्मी जिनेश्वर की भक्ति से वंचित न रहे। कलिकुण्ड पार्श्वनाथ का मन्त्र एवं भक्तामर स्तव का पाठ भी त्रिकाल इस मूर्ति के आगे करना। जिनभा मूर्ति ग्रहणकर अत्यन्त रोमाञ्चित हुआ। गुरुदेव को नमस्कारकर वापस घर लौटा। पूर्व दिशा की ओर मूर्ति का मुख रखकर, शुभ दिन एवं समय पर, नमस्कार महामंत्र पूर्वक प्रतिमा स्थापन की। अब नित्य कलिकुण्ड का मन्त्र एवं भक्तामर स्तव का पाठ करने लगा। जब भी मन में आया तब भक्ति में लीन हो जाता। अब समय

भी आराधना में अधिक बीतने लगा। मजदूरीकर थका हुआ भी घर आने पर मूर्ति को देखते ही शारीरिक श्रम भूल जाता था। इस प्रकार दिन बीत रहे थे। एक दिन मध्यरात्री के समय उसकी आँखें खुल गयी। कोशिश करने पर भी आँखें नहीं लगी। उठकर प्रतिमा के सामने बैठकर भक्तामर के तैतीसवें श्लोक का स्मरण करने लगा। अचानक उसके आगे तेज पुञ्ज से शोभायमान, सूर्यमण्डल समान एक दिव्य विमान आकाश मार्ग से उतरा। चक्रेश्वरी की प्रतिहारी उस विमान में से नीचे उतरी। उसने कहा आदिनाथ की स्तुति एवं पार्श्व प्रभु की पूजा करने से मेरी स्वामिनी चक्रेश्वरी देवी तुम पर अति प्रसन्न हुई है। उन्होंने तुमको धनवान एवं अजेय बनाने की इच्छा से यह रत्न दिया है। यह महामहिमावान् रत्न नित्य अपनी भुजा पर बान्धे रखना। इससे सब मनोवाञ्छित सिद्ध होंगे कहकर देवी विमान में बैठकर आकाश मार्ग से वापस लौट गयी। अब दररोज के समान उसका दिन भार वहन करने में एवं पार्श्व प्रभु की भक्ति में व्यतीत होता था। एक दिन वह घी से भरा घडा लेकर भयंकर वन से गुजर रहा था। यह वन अति डरावना था। इस वन में दिन दहाड़े भी चोर मुसाफीरों को लूंट लेते थे। लोगों का समूह साथ मिलकर इस वन का उल्लंघन करता था। न जाने कितनी हत्याएँ हो चूकी थी इस वन में। यहाँ चोर लोग साहुकार की तरह घूमते थे। राजा भी इन चोरों का निग्रह करने में नाकाम रहा था। अचानक उस वन में जिनभा का भी तीन लूंटेरों से सामना हो गया। ये तीनों भयंकर लूटेर थे जिन्होंने धोलकावासियों एवं राजा के नाक में दम कर रखा था। हत्याएँ, बलात्कार, लुंटमार से इनका जीवन अति मलीन बन चूका था। तीनों ने जिनभा से कहा - चल यह घी का घडा नीचे रखकर यहाँ से चलता बन वरना तेरी खैर नहीं। जिनभा ने जवाब दिया - दूर हट जाओ मेरे रास्ते से। मैं तुम्हारी गीदड धमकियों से डरनेवाला नहीं। यह सुनकर डाकू आग-बबूला हो गये। प्रहार करने के लिए तैयार हुए। जैसे ही डाकुओं ने तलवारे निकाली वैसे ही आँख के एक पलकारे में तीनों को बाण से विंध दिया। तीनों की छाती के आर-पार हो गये बाण। इतने में कुछ मुसाफीर पीछे आ रहे थे। वे तीनों डाकुओं की लाश एवं जिनभा के हाथ में धनुष्य देखकर सब मामला समझ गये। सब जिनभा की जयजयकारकर उसे कन्धे पर बिठाकर नाचने लगे। धन्यवादता प्रकट करते हुए कहा इन तीनों खूंखार डाकुओं के कारण सब यात्रिकों के जान का खतरा रहता था। अब हम स्वेच्छा से इस मार्ग पर आना-जाना कर सकते हैं। पूरे धोलके में जिनभा के शौर्य की बात फैल गयी। जन-जन की जबान से जिनभा की प्रशंसा निकल रही थी। बात फैलते-फैलते पाटण नरेश

भीमदेव के कानों तक भी पहुँची। उसने सोचा क्या वास्तव में यह जिनभा इतना पराक्रमी है अथवा अन्धेरे में तीर चलाया जो सही निशाने पर लग गया? एक सामान्य नागरिक और वह भी भार वहन करनेवाला इतना शूरवीर हो यह बात मानने में नहीं आती। इन तीन खूंखार डाकुओं ने तो न जाने कितने ही सिपाहिओं को भी मौत के घाट उतार दिया है। एक डाकू सौ पर भारी पड़ता था, इतने पराक्रमशाली थे वे और उन तीनों को एक झटके में साफ कर दिया। जरुर कुछ न कुछ भूल हुई है। भीमदेव ने मन्त्री से जिनभा को पाटण लाने का आदेश दिया। आदेश सुनते ही मन्त्री धोलका जाकर आदरपूर्वक विनतीकर जिनभा को पाटण ले आया। भीमदेव जिनभा के फौलादी शरीर देखकर आश्चर्यचकित हुआ। विशाल वक्षस्थल, जानु प्रमाण भुजा, सादे वस्त्रवाला फिर भी तेजस्वी, अष्टमी चन्द्र समान देदीप्यमान ललाट, ऊँचा कद, मजबूत हाथ, बड़ी-बड़ी आँखें एवं सिंह समान आवाज देखकर भीमदेव उसके प्रति आकर्षित हुआ। उसकी शङ्का का समाधान उसके शारीरिक लक्षणों को देखकर तत्काल हो गया। निस्संकोच यह कैसा भी असंभव कार्य कर दिखाने का सामर्थ्य रखता है। भीमदेव ने कहा जिनभा! गुजरात देश में क्रूर डाकूओं से रक्षण करने में समर्थ मेरी यह तलवार मैं तुम्हें भेंट करना चाहता हूँ। क्या तुम इसे स्वीकार करोंगे? ये राजा भीमदेव जिनभा को महामन्त्री पद देना चाहते हैं। इस आशय को समझकर अवसरज्ञ एवं उचितभाषी ऐसे शत्रुशल्य नामक सेनापति ने कहा - राजन्! यह तलवार तो उसे समर्पित करनी चाहिए जिसे तलवार चलाने का अभ्यास हो, इसका वहन यह जिनभा नहीं कर सकता। यह तो घी के घड़े, कपास, तैलादि भार को ही वहन कर सकता है। तलवार चलाना इसके बस की बात नहीं। जिनभा ने सेनापति को उद्देशकर प्रत्युत्तर देते हुए कहा - तलवार, धनुष्य, भाले, शक्ति, चक्र को धारण करनेवाले बहुत से हैं किन्तु जो लोग रण में शूरवीर हैं ऐसे पुरुषों की प्रसूति देनेवाली माताएँ विरला है। राजा ने जिनभा के शब्दों की तारीफ करते हुए कहा तूने सुन्दर कहा। तेरी वाणी से शूरवीरता टपकती है। अवसरज्ञ शत्रुशल्य सेनापति ने राजा के मनोभाव जानकर कहा - अश्व, शस्त्र, शास्त्र, वीणा, वाणी, नर, और नारी यदि अयोग्य पुरुष के हाथ लगे तो अयोग्य हो जाते हैं एवं योग्य हाथों में योग्य। ये सब चीजें पुरुष विशेष के अधीन हैं। आपके द्वारा आदर किया गया यह जिनभा भी वीरशिरोमणि हो जायगा। अधिपति जिस पर प्रसन्न हो वह व्यक्ति भी बलशाली बन जाता है। आपके जैसे योग्य के हाथ यह जिनभा लगा है तो यह सब कुछ करने में समर्थ है क्योंकि

आपका बल भी इसका सहायक जो है। यदि आप इसे खुश होकर कुछ देना ही चाहते हैं तो धोलका का आधिपत्य दे दीजिए। वहाँ डाकुओं का त्रास बहुत गम्भीर एवं भयंकर रुप ले रहा है। भविष्य में यह डाकुओं का समूह सबके लिए खतरनाक बन सकता है। सेना को डाकुओं को पकड़ने में लगाने पर पाटण पर शत्रु राजा का खतरा उत्पन्न हो सकता है, अल्प सैन्य के कारण। इसलिए धोलका में डाकुओं के निग्रह की जिम्मेदारी जिनभा को सौंप दीजिए। राजा भीमदेव को भी सेनापति की सलाह योग्य लगी। उसने पट्टदुकूल, वेष, स्वर्णमुद्रिका, खड्ग, धोलका का आधिपत्य एवं सैन्य जिनभा को समर्पित किया। राजा को नमस्कारकर जिनभा अपने नगर वापस लौटा। शानदार ढंग से नगर प्रवेश हुआ। अब धोलका की बागड़ोर जिनभा ने अपने हाथ में ली। सभी डाकू, चोर, लूंटेरों को तलाशकर उन्हें कारागृह में डाला जाने लगा। एक महीने के अन्दर सभी को पकड़कर बन्दीखाने में डाल दिया। धोलका नगर में तस्करों का नाम शेष हो गया। थोड़े दिनों में पूरे गुजरात देश से चोरों का नामो-निशान मिटा दिया। अब प्रजा सुख-शांति से रहने लगी। एकबार किसी चारण को जिनभा के शासन की परीक्षा करने की इच्छा हुई। उसने एक ऊँट चूरा लिया। फरीयादी जिनभा के दरबार पहुँचकर कहने लगा - राजन्! कल मेरा ऊँट चुराया गया। मैंने बहुत तलाश की किन्तु कोई पता नहीं चला अब आप ही इसकी तलाश करें। जिनभा ने तत्काल सैनिकों को चोर पकड़ने का आदेश दिया। सिपाहियों ने ऊँट सहित चोर को पकड़ लिया। जिस समय जिनभा पूजा कर रहा था तब चोर को हाजिर कर सिपाही ने कहा यह चोर है। इसका क्या किया जाय? उसने ऊँगली गले पर फिराकर मौनपूर्वक ही इशारे से वध का आदेश दे दिया। वध का आदेश देखकर चारण ने कहा - जिसके द्वारा अहिंसक देव की पूजा की जाती है वह हिंसा का आदेश देनेवाला कैसे हो सकता है? और वह भी जिनमंदिर में। इस बात को सुनकर उस चारण को छोड़ने का आदेश दे दिया और चेतावनी दी कि फिर कभी चोरी की तो मरा ही समझना। उस चारण ने कहा - एक चोरी से यह परिणाम आया है तो भला दूसरी बार ऐसी बेवकूफी क्यों करुँगा? आपने गुजरात देश के चोरों को कैसे पकड़ा? परीक्षा के द्वारा मैंने जान लिया। मैं कोई चोर नहीं किन्तु चारण हूँ और आपकी परीक्षा के लिए ऊँट चुराया था। चारण ने जिनभा की स्तुतिकर विदाई ली। जिनभा ने रत्नमयी, श्री पार्श्वनाथ की अद्वितीय प्रतिमा बनवायी। और स्तंभन पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा प्रकटकर दुर्लभ देवराज के प्रतिबोधक, श्री जिनेश्वर सूरि के पट्टधर, नवांगी टीकाकार, श्री अभयदेव सूरि के

पास उस मूर्ति की प्रतिष्ठा करवायी। महामहोत्सव एवं महादानपूर्वक गुरुवचन से चक्रेश्वरी युक्त श्री युगादिदेव के प्रासाद का निर्माण करवाया। नव अङ्ग वृत्ति की पुस्तकें लिखवायी। कई 'छ'रि पालित संघ निकाले। चिरकाल तक राज्य भोगा। उसने नगर में पोटली उठाकर व्यापार करनेवाले पर शुल्क माफ कर दिया। किसी भी पोटली वाले के पास कर ग्रहण नहीं किया जाता था। यदि उनके पास शुल्क कोई ग्रहण कर ले तो उस पर जिनभा कोपायमान होता। उसके शासन काल द्वौरान् प्रजा अत्यन्त सुखी एवं बेफिक्र थी। इतने बड़े राज्य का आधिपत्य प्राप्त करने पर भी पहले समान नित्य त्रिकाल पूजा एवं भक्तामर स्तव का पाठ करता था। जैनशासन के उत्कर्ष में जिनभा ने तन-मन-धन से सहयोग दिया।

प्रश्न : तीव्रतर द्वेष का परिणाम कैसा?

तिव्वयरे अ पओसे सयगुणिओ, सयसहस्स कोडिगुणो।
कोडाकोडिगुणो वा हुज्ज विवागो बहुतरोवा ॥

तीव्रतर प्रद्वेषपूर्वक के पाप का फल सो, लाख, क्रोड, क्रोडाक्रोड गुना या उनसे भी अधिक विपाकोदय भुगतना पड़ता है।

प्रश्न : कौन चारित्र धर्म का पालन नहीं कर सकता ?

यः सद्बाह्यमनित्यं च, क्षेत्रेषु न धनं वपेत् ।
कथं वराकश्चारित्रं, दुश्चरं स समाचरेत् ॥

जो आत्मा स्व मालिकी का बाह्य एवं अनित्य धन सप्तक्षेत्रों में व्यय नहीं कर सकता वह बिचारा कष्टदायक चारित्र की प्रतिपालना कैसे कर सकेगा?

प्रश्न : श्रावक को कहाँ रहना?

जत्थ पुरे जिनभवणं, समयविरू साहुसावया जत्थ।
तत्थ सया वसियव्वं, पउरजलं इंधणं जत्थ ॥

जहाँ जिन भवन हो, शास्त्रज्ञ साधु एवं श्रावक रहते हो, जल, अग्नि की बहुलता हो उस नगर में सदा रहना चाहिए।

चतुस्त्रिंशत्तम श्लोक : श्च्योतन्मदाविल...

भावार्थ : झरते मद द्वारा व्याप्त और चपल तथा गंडस्थान पर मदोन्मत्तपने से घूमते ऐसे भंवरों की झंकार से वृद्धिगत कोपवाले (तथा) ऐरावत हाथी समान विशाल (तथा) उद्धत (और) सन्मुख आते ऐसे हाथी को देखकर आपके आश्रितजनों को भय नहीं होता।

चतुस्त्रिंशत्तम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा :

श्री पाटलीपुर नगर में सोमराज नामक राजपुत्र रहता था। उसके कुल, गोत्र आदि सब नष्ट हो गये थे। धन आदि वैभव काल कवलित हो गया था। अब उसके पास एक फुटी कौडी भी नहीं रही। सोचने लगा कि इस नगर में पूर्वजों के द्वारा जो ऐश्वर्य भोगा है अब उसका नाम शेष रह गया है। महेनत-मजदूरी कर उनकी कीर्ति पर कलङ्क लगाना योग्य नहीं। इसलिए देशान्तर जाकर, अपना गुजारा चाहे जैसे भी चला लूंग किन्तु अब इस नगर में नहीं रहना। इस प्रकार विचारकर वह परदेश के लिए रवाना हुआ। वह इतनी दूर जाना चाहता था कि इस नगर के लोगों की छाया भी वहाँ न पड़े और न ही उनका नाम सुनायी दे। दिन भर चलता रहता एवं रात को किसी एकान्त स्थान में विश्रामकर फिर आगे बढ़ जाता। जो मिलता वह खा लेता। एक दिन शाम को किसी वन में पहुँचा। वहाँ श्री वर्धमानसूरि नामक आचार्य से भेंट हुई। उनको वन्दनकर पास में बैठा। आचार्य श्री ने देशना दी कि विपुल राज्य, रोगरहित शरीर, दीर्घ आयुष्य और अन्य भी सुख जीवदया से प्राप्त होते हैं। जिनेन्द्र पूजा, गुरुसेवा, प्राणिदया, सुपात्रदान, गुणानुराग, शास्त्रश्रवण ये मनुष्य जन्म रूपी वृक्ष के फल हैं। मनुष्य जन्म के द्वारा ही साध्य तक पहुँचा जा सकता है। उत्कृष्ट दया धर्म का पालन इस मनुष्य जन्म में ही संभव है । इस प्रकार उपदेश सुनकर उसका मन जैनधर्म के प्रति झुकाव-वाला हुआ। कुछ दिन उसी वन में ठहरने का निर्णय किया। आचार्य भगवन्त उसे रोज उपदेश देते थे। जैन धर्म की तात्त्विक एवं मार्मिक बातों को समझाते थे। आचार्य श्री ने नमस्कार महामंत्र एवं भक्तामर स्तोत्र के अतिगूढ़ बातों के बारे में समझाकर वे सिखाये। उसने विनयपूर्वक उन दोनों को ग्रहण किया। थोड़े दिन की स्थिरता के बाद आचार्य श्री को वन्दनकर वहाँ से आगे बढ़ा। नित्य परमेष्ठी मन्त्र का जाप एवं त्रिकाल भक्तामर स्तोत्र का भावपूर्वक स्मरण करने लगा। इस प्रकार पृथ्वीतल पर विचरता, उसकी शोभा निहालता अपनी नगरी से सुदूर हस्तिनापुर पहुँचा। वहाँ उसका कोई बसेरा नहीं होने से उद्यान के एक वृक्ष पर ही अपना निवास स्थान बना लिया। एक दिन पट्टहस्ती बडे आलान स्तम्भ को उखेडकर, श्रृंखला एवं बन्धनों को तोड़कर, महावत को दूर फेंककर,

दूकान, स्तम्भ आदि को भाँगता हुआ, घोडे, गाय आदि तिर्यंचों का घात करता हुआ, ऊपर वृक्षों पर भी सूंड उछालता हुआ, मत्त हुआ, मर्यादा का पालन नहीं करता हुआ नगर के बाहर निकल गया। राजा, सैनिक, महावत, प्रजाजन सब उसके पीछे दौड़ रहे थे। वह उस उद्यान में पहुँचा जहाँ राजकुमारी मनोरमा अपनी सखियों के साथ खेल रही थी। साक्षात् मौत जैसे उस हाथी को देखकर सभी सखियाँ मनोरमा को अकेली छोड़कर प्राण बचाने के लिए इधर-उधर भाग गयी। हाथी मनोरमा को खड़ी देखकर उसकी ओर दौड़ा। मनोरमा घबराकर सहायता के लिए इधर-उधर देखने लगी। राजा ने अपनी पुत्री की ओर हाथी को बढ़ते देखकर घोषणा की, जो व्यक्ति मेरी पुत्री को हाथी से बचायेगा उसे आधा राज्य एवं अपनी पुत्री दूंगा। किसी की भी हिम्मत नहीं हुई उस साक्षात् यम से रक्षा करने की। सब लोग सोचने लगे कि अपने-अपने प्राण सबको प्यारे हैं। लोभ में आकर कौन अपनी जान को खतरे में डाले? कोई उसकी रक्षा के लिए आगे नहीं आया। राजा की घोषणा उस उद्यान में बैठे हुए सोमराज ने भी सुनी। वह तुरन्त वहाँ से भागता हुआ मनोरमा के समीप पहुँचा। उसे उठाकर भागने लगा। हाथी यह देखकर अत्यन्त कोपायमान होकर उसका पीछा करने लगा। सोमराज ने श्च्योतन्मदाविल... श्लोक का स्मरण करते हुए तेजगति से भागकर मनोरमा को एक सुरक्षित स्थान पर छोड़ दिया। उसके बाद नीडरता से भक्तामर के चौतीसवें श्लोक का स्मरण करता हुआ गज के सामने खड़ा हो गया। उस पर खुश हुई चक्रेश्वरी ने गज के मद को शान्त कर दिया। वह शान्त होकर वहीं बैठ गया। मनोरमा ने सोमराज की ओर तिरछी नजर से देखा। सोमराज की दृष्टि भी मनोरमा की ओर गयी। उसकी स्नेहिल दृष्टि से सोमराज भी प्रेमाधीन हो गया। नजरें चार हुई। अब दोनों एक-दूसरे का साथ नहीं छोड़ना चाहते थे। मनोरमा ने सोचा इस भयंकर विपत्ति में केवल अकेला यह वीरशिरोमणि मुझे बचाने के लिए आगे आया। अब जीवनसाथी करूँगी तो इसे ही वरना मैं अपने प्राणों की आहुति दे दूंगी। मेरी जीवन डोर मैंने अब इनके हाथ थाम दी है। सोमराज गज पर आरूढ होकर हस्तिशाला में आया और उसे आलान स्तम्भ के साथ बान्ध दिया। राजा के बुलाने पर वह सीधा राजमहल में पहुँचा? राजा ने उसके देश, नगर, जाति, कुल आदि के बारे में कई प्रश्न किये। सोमराज ने उन सबके अस्पष्ट उत्तर दिये कारण कि उत्तम पुरुष अपने मुंह से अपनी एवं अपनों की प्रशंसा नहीं करते हैं। उनके द्वारा साधित असाध्य कार्य ही उत्तम लक्षणों की पहचान करवाता है। उसके मौन को देखकर राजा ने सोचा यह वैदेशिक अकुलीन दिखायी देता है इसीलिए सब बातों का अस्पष्ट उत्तर दे रहा है। इसे अपनी पुत्री देना ठीक नहीं।

ऐसे लोग तो धन से ही खुश हो जाते हैं। राजा ने थोडा धन देकर उसे रवाना कर दिया। बात राजकुमारी के कानों तक भी पहुँची। उसने सोचा अहो! मेरे पिताजी की लघुता कि अपनी जबान से मुखर गये। नीतिशास्त्र भी कहता है - चाहे शिरच्छेद हो जाय या बन्धन में पड़ना पड़े अथवा लक्ष्मी भी उसका त्याग कर दे किन्तु सज्जन पुरुष स्वीकारी हुई बात को किसी भी परिस्थिति में पूर्णकर रहते हैं। उनके द्वारा प्रमादवश बोले हुए अक्षर भी पत्थर पर टंकण के समान अन्यथा नहीं होते। यदि मन्दरालचल भी चलित हो जाय, सागर भी सूख जाय, सूर्य भी पश्चिम से उदित हो जाय किन्तु सत्पुरुष का कथित पद कभी अन्यथा नहीं होता। मेरे पिताजी ने नीतिशास्त्र के वचन बिसार दिये हैं। इस प्रकार विचार करती, सोमराज को याद करती-करती कामदशा को प्राप्त हुई। उसका वही नयन-मिलन क्षण बार-बार स्मृतिपट पर हिलोरे लेने लगा। न खाने में, न शृंगार में किसी भी में उसका चित्त स्थिर नहीं हो रहा था। सखियाँ मिलकर उसे बात करने के लिए मजबूर करने लगी किन्तु वह तो बिलकुल मौन रही। न कुछ कहती है न कुछ पूछती बस मौन रहती है। अन्त में थककर सभी राजा के पास गयी। राजा से कहा राजकुमारी किसी भूत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, डायण, क्षेत्रपाल आदि से ग्रस्त हो गयी है। न बोलती, न खाती है। बात सुनकर राजा ने तुरन्त मान्त्रिक, वैद्य आदि को बुलाकर राजकुमारी का इलाज करने को कहा। सबने अपना-अपना प्रयत्न किया किन्तु सब बेकार। सबने मिलकर कहा राजन्! यह कोई दुष्ट व्यन्तर राजकुमारी को पीड़ा दे रहा है, इसे काबू में लेना हमारे लिए अत्यन्त कठिन है। यह सुनकर राजा की चिन्ता और बढ़ गयी। उसने नगर में पटह बजवाया कि जो भी राजकुमारी को ठीक करेगा उसे भारी इनाम मिलेगा। पटह बजते-बजते उद्यान के पास भी आया जहाँ सोमराज ठहरा हुआ था। वह सारा मामला समझ गया कि यहाँ जैसी मेरी स्थिति है वैसी ही राजकुमारी की भी होगी। उसने पटह स्पृष्ट कर कहा - मैं अपनी मन्त्रशक्ति से राजकुमारी को ठीक करूँगा। राजपुरुष उसे राजा के पास ले आये। राजा ने देखा अरे! यह तो वही व्यक्ति है जिसने राजकुमारी की पहले जान बचायी थी। अब बात करने का समय नहीं है शीघ्र इसे राजकुमारी के इलाज के लिए भेजना चाहिए। इस प्रकार विचारकर राजसेवकों को आदेश दिया कि इसे राजकुमारी के पास ले जाओ। राजपुरुष उसे अन्तःपुर में राजकुमारी के पास ले आये। रानी ने कहा बेटी! यह तुम्हारी पीड़ा दूर करने के लिए आया है अब उठकर बैठ जा। मनोरमा ने बात सुनी असुनी कर दी। वह सोमराज के अलावा किसी भी

पुरुष का मुंह देखना नहीं चाहती थी। वह तो वैसे ही लेटी रही। सोमराज ने कहा - आप चिन्ता न करे रानीजी, मैं इसका इलाज ऐसे ही कर देता हूँ। बीच में कुछ गूढ मन्त्र इसके कान में बोलने होंगे वे मैं इसके समीप, स्वयं जाकर कान में बोल दूंगा कहकर कुङ्कुम, राख, मोरपींछी, दीपक आदि कई वस्तुएँ मंगायी। एक बडा गोलाकार मांडला किया। उसमें दीपक, धूपादि रखकर, भौंहे तानकर, मोरपींछी हिलाता हुआ 'ॐ हुँ फुट् फुट् स्वाहा' कहकर मन्त्र बोलने लगा। राजकुमारी तो उस ओर ध्यान दिये बिना मानो योगिनी के समान ध्यानलीन, दावानल से जली लता, हिम से दुःखित कमलिनी, राहुग्रस्त चन्द्रकला, जाल में पडी हिरणी, पाशबद्ध राजहंसी, पिंजड़े में रहे हुए राज पोपट, के समान तड़पती हुई इन सब से बेखबर थी। थोडी देर मन्त्र बोलकर सोमराज ने कहा - अब इसे गूढ मन्त्र सुनाता हूँ जिसे सुनते ही दुष्ट व्यन्तर, पिशाच आदि जो कोई भी होगा वह यहाँ से क्षणभर में रफूचक्कर हो जायगा। सोमराज ने मनोरमा के पास जाकर उसके कान में कहा - हे प्रेयसी! मैं वही सोमराज तेरे रूप से अपहत चित्तवाला तेरे बिना कहीं पर भी रहने के लिए समर्थ नहीं हूँ। हे मृगाक्षि! स्त्रिओं के द्वारा देखने पर ही पुरुष अपना चित्त हार बैठता है किन्तु तूने मेरी ओर स्मित, विकस्वर, विलास एवं कटाक्ष से देखा था तो मेरी हालत क्या होगी? मुझे मालूम है कि तू भी मेरी विरहाग्नि से पीड़ित है। अब तू जल्दी स्वस्थ हो जा जिससे अपना मनोरथ पूर्ण हो। उसकी बात सुनकर राजकुमारी के जान में जान आ गयी। उसका रोम-रोम पुलकित हो गया। खुश होकर उठ खड़ी हो गयी अपने प्रियतम के दर्शन के लिए। इतने में वर्तमान परिस्थिति की जानकारी के लिए राजा स्वयं राजकुमारी के कमरे में आया। वहाँ आकर देखा कि राजकुमारी पूर्ववत् बिलकुल स्वस्थ हो गयी है। राजा ने सोचा इसके कार्य से यह कोई उत्तम पुरुष दिखायी देता है। दो - दो बार मेरी पुत्री को संकट से निवारा है। इसके शरीर, वीरता, गम्भीरता आदि गुण ही स्पष्ट ऊँच कुल के लक्षण संकेतित कर रहे हैं। कहा भी है आकृति गुणों को कहती है। मेरी पुत्री के लिए यही वर योग्य है एवं न्याय-नीति भी यही है। इस प्रकार विचारकर अपनी पुत्री के साथ सोमराज का पाणिग्रहण कराया। अपनी शर्त अनुसार आधा राज्य भी उसे दिया। अब वह इन्द्र के समान मनोरमा के साथ ऐश्वर्य भोग-उपभोग करने लगा। जिनमंदिर का निर्माण कराया। न्याय-नीति पूर्वक राज्य का पालन किया एवं नित्य प्रति भक्तामर स्तव का त्रिकाल स्मरण करता था। परम श्रावक हुआ। अन्त में अपने पुत्र को राज्य सौंपकर धर्म में लीन हुआ।

पञ्चत्रिंशत्तम श्लोक : भिन्नेभ...

भावार्थ : भेदे हुए हाथी के कुम्भस्थल से पड़ते, उज्ज्वल और रुधिराक्त मोती के समूह द्वारा पृथ्वी के भाग को शोभानेवाला (तथा) आक्रमण के लिए तैयार किये हैं पैर जिसने ऐसा सिंह भी (अपनी एक ही) आक्रमण में आये ऐसे आपके चरण अचल आश्रित (सेवक) को नहीं मार सकता।

पञ्चत्रिंशत्तम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा :

श्रीपुर नगर में देवराज नामक निर्धन महाश्रावक रहता था। धर्म संस्कार उसे वारिस में मिले थे। आवश्यक क्रियाएँ, देव-गुरु दर्शन, वंदन, पूजन, भक्तामर स्तव का पाठ आदि नित्य करता था। उसे जैन धर्म पर अत्यन्त श्रद्धा थी। निर्धन होने पर भी उसका लक्ष धन की अपेक्षा से मोक्ष के प्रति अधिक था। जिनेश्वर की पूजा, व्रतों में प्रीति, सामायिक-पौषध में यत्न, सुपात्र में दान, सुतीर्थ पर भ्रमण, सुसाधुओं की सेवा ये सब शिवलोक के मार्ग हैं। इस प्रकार गुरु के द्वारा उपदिष्ट धर्म की साधना में रत था। एक दिन नगर में पटह बज रहा था कि सार्थ साकेतपुर की ओर जा रहा है। जिस किसी को भी साकेतपुर साथ आना हो वह निस्संकोच आ सकता है। देवराज भी धन कमाने की इच्छा से उस सार्थ के साथ जुड़ गया। उसने सोचा साकेतपुर महानगर है वहाँ धनोपार्जन का विशेष प्रबन्ध हो जायगा तथा जिनालय भी बहुत हैं, उनके दर्शन और गुरुवाणी श्रवण का भी लाभ मिल जायगा। इस विचार से सार्थजनों के साथ साकेतपुर की ओर प्रयाण किया। यात्रा दरम्यान अपनी नित्य आवश्यक क्रियाएँ तथा त्रिसन्ध्य भक्तामर स्तव का पाठ अचूक करता था। अब सार्थ महाटवी में पहुँचा जो सिंह, बाघ, अजगर, भिल्ल, चिते आदि से व्याप्त था। इन महाभयंकर प्राणिओं की आवाज दिल को दहला देती थी। वृक्ष पर सांप आदि को देखकर सब सार्थीजन सहमे हुए साथ-साथ चल रहे थे। मध्याह्न के समय एक नदी के किनारे पर सार्थ ठहरा। कुछ लोग यहाँ-वहाँ टहलने निकले। रसोइयें खाना पका रहे थे। कुछ लोग आराम कर रहे थे। तो कुछ नदी में नहाने के लिए उतरे। देवराज भी नदी के जल से स्नानकर, एक सुन्दर वृक्ष के नीचे स्वच्छ वस्त्र धारणकर भक्तामर स्तव का स्मरण करने लगा। इतने में बिजली के समान जाज्वल्यमान नेत्रवाला, तीक्ष्ण दाढोंवाला, तलवार के समान मुखवाला, अत्यन्त तीखे नखवाला, दीर्घ पूछ को जमीन पर पटपटाता हुआ, भयंकर आवाज करता हुआ एक केसरी सिंह वहाँ आया। तत्क्षण हाथी के कुम्भस्थल को भेदकर मारने से सिंह का शरीर भी खून से लथपथ था तथा कुम्भस्थल भेदन से निकले

मोती सिंह के नख में फंसे हुए थे। उस विकराल स्वरूपवाले सिंह के दर्शन कर सभी सार्थजन के मानो दिल की धडकन रुक गयी। काटो तो खून नहीं ऐसी हालत हो गयी सब सार्थजनों की। एक व्यक्ति की नजर भक्तामर स्तव में लीन देवराज पर गयी। उसकी नीड़रता देखकर तुरन्त भागकर वह उसके पीछे जाकर छुप गया। सब लोग भी उसके पीछे-पीछे भागकर उस वृक्ष के नीचे आ गये। वे सब भय से थर-थर कांप रहे थे। केसरी सिंह उनकी ओर बढ़ा। देवराज ने भक्तामर स्तव के पैंतीसवे श्लोक का स्मरण चालू किया। चक्रेश्वरी ने प्रत्यक्ष होकर उस सिंह को स्तम्भित कर दिया। हिंस्र और क्रोधी भी कृपालु और क्षमी के समान आचरण करने लगा। सभी सार्थजन उस भयंकर सिंह को शान्त देखकर अत्यन्त खुश हुए। सिंह देवराज को नमस्कारकर उसके आगे नख में रहे हुए तीन मोती डालकर अपने स्थान पर चला गया। उसके मन्त्र की महिमा से सभी खुश हुए। देवराज ने भक्तामर स्तव की महिमा वर्णनकर धर्मोपदेश दिया। विपत्ति में धैर्य, अभ्युदय में क्षमा, सभा में वाक्पटुता, युद्ध में पराक्रम, यश में रुचि, शास्त्र में व्यसन ये सब महात्माओं के स्वयं सिद्ध हैं। इस प्रकार उपदेश सुनकर सभी सार्थजन जैनधर्म के प्रति आदरवाले हुए। देवराज को अपने गुरु समान माना। क्रम से निर्विघ्नतापूर्वक महाटवी का उल्लंघन कर सार्थ साकेतपुर पहुँचा। उन तीन असली मोतिओं को बेचकर देवराज महर्द्धिक श्रेष्ठी हुआ। साकेतपुर में व्यापारकर बहुत धन अर्जितकर वापस श्रीपुर लौटा। उसने सोचा धर्म से मैं संपन्न बना हूँ। राज्य, सम्पत्ति, भोग, सुकुलजन्म, सुरुपता, पाण्डित्य, दीर्घ आयु, आरोग्य, ये सब धर्म के फल हैं। इसलिए मैं और धर्मकार्य ज्यादा करुँ। इस प्रकार विचारकर धन आदि का मुक्त हाथ वितरण करने लगा। चिरकाल तक विलासकर अन्त में अनशन पूर्वक देह त्यागकर देवलोक में महर्द्धिक देव बना।

प्रश्न : आरंभादि की व्याख्या क्या है?

संकल्पो संरंभो, परितावकरो भवे समारम्भो।
आरम्भो उद्दओ, सव्वनयाणं विसुद्धाणं ॥

जीव विराधना का संकल्प संरंभ, परिताप देना समारंभ, प्राणनाश वह आरंभ यह सर्व विशुद्धनय से सम्मत्त है।

षट्त्रिंशत्तम श्लोक : कल्पान्तकाल

भावार्थ : प्रलयकाल के वायु द्वारा उद्धत किये हुए, अग्नि जैसी जाज्वल्यमान ऊँची ज्वालावाले, उड़ते तिनकेवाले, संपूर्ण जगत को मानो निगलने की इच्छावाले, सन्मुख आते ऐसे समस्त प्रकार के दावानल को आपका नाम कीर्तन रूपी जल शमन करता है।

षट्त्रिंशत्तम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा :

प्रतिष्ठानपुर नगर में लक्ष्मी निधान ऐसा.लक्ष्मीधर नामक सार्थवाह रहता था। कई बार देश-विदेश में जाकर क्रय-विक्रय के द्वारा अखूट धन का उपार्जन किया करता था। वह जिनेश्वर का परम भक्त था और त्रिकाल भक्तामर स्तव का स्मरण करता था। इतना धन होने पर भी धनपिपासा अभी तक उसकी शान्त नहीं हुई थी। लक्ष्मी की लालसा उसे देशाटन के लिए प्रेरित करती रहती। वह सोचता जो लक्ष्मी कमल, समुद्र और विष्णु के वक्षस्थल पर है वह केवल श्रुति है। वास्तविक लक्ष्मी तो व्यवसाय एवं समुद्र (जहाज) में प्रत्यक्ष देखी जाती है। लक्ष्मी बिना व्यक्ति कहीं भी आदर प्राप्त नहीं करता। लक्ष्मी है तो लोग उसकी सेवा, आरोग्य की पृच्छा के लिए हाजिर होते हैं। लक्ष्मी से ही भोग, विलास, वस्तु, इन्द्रिय साधन प्राप्त होते हैं। बिचारे दरिद्री के मनोरथ आजीवन तृप्ति के बिना उसकी देह के साथ काष्ठ में भस्म होकर नष्ट हो जाते हैं। इसलिए अब की बार बहुत माल लेकर पूर्व दिशा की ओर जाऊँ जिससे धन का अतिलाभ होगा।

इस प्रकार विचारकर वृषभ, ऊँट, गधे, भैंस, घोड़े आदि के द्वारा वहन किये जाते हुए गाड़ियों पर अगण्य माल भरकर बहुत बड़ा सार्थकर व्यापार के लिए वह सार्थवाह पूर्व दिशा की ओर चला। वह समय ग्रीष्म ऋतु का था। सूर्य मानो अँगारे बरसा रहा था। नीचे धरती सूर्य के ताप से धधक रही थी। रह-रहकर गला सूख रहा था। इतनी भयंकर गर्मी में भी सार्थ आगे बढ़ रहा था। थोडे दिन बाद एक भयानक महाटवी में पहुँचा। वह वन कई बडे-बडे वृक्षों से शोभ रहा था। मानो गर्मी की पीडा दूर करने के लिए ही छायादार वृक्ष सेवा में हाजिर खड़े थे।

उस दिन तापमान अत्यन्त बढ़ गया था। सबको थके देखकर लक्ष्मीधर ने आज वहीं पड़ाव डालने का निश्चय किया। सब लोग वृक्ष की छाया में सो गये। सार्थवाह लक्ष्मीधर स्नानकर पवित्र होकर एक वृक्ष के नीचे बैठकर नित्यक्रम अनुसार भक्तामर स्तव का पाठ करने लगा। पहरेदार सशस्त्र पहरा दे रहे थे। लोग बेफिक्र से सोये हुए थे। इतने में वन में बांस के घर्षण से दावानल प्रकट हुआ।

ज्वालाओं से विकराल वृक्षों को जलाता हुआ पूर्व दिशा में महादव उत्पन्न हुआ। देखते ही देखते क्षणभर में दक्षिण दिशा में भी फैल गया। लोग उठकर भागने लगे किंतु चारों ओर से आग से घिर चूके थे। सब घबराकर चिल्लाने लगे। वस्तु एवं धन की रक्षा की बात तो दूर सबने जीवितव्य की आशा भी छोड़ दी। सभी अपने-अपने इष्टदेव का स्मरण करने लगे। पागलों की तरह इधर-उधर हाहारव करते हुए भागने लगे। किन्तु उस आग में से निकलने का रास्ता कहीं पर भी नजर नहीं आया। माताओं ने अपने बच्चों को छाती से लगा लिया। ऐसा लग रहा था कि पलभर में सब कुछ भस्मीभूत होकर राख हो जायगा। लक्ष्मीधर भी अपने किये पर पछताने लगा। उसने सोचा इतनी मिलकत होने पर भी व्यर्थ में लोभाभिभूत होकर अपने प्राण संकट में डाले। अब केवल युगादिदेव की ही शरण है। इस प्रकार विचारकर भक्तामर पाठ में अत्यन्त लयलीन हो गया। कहा भी है - लोग विपत्ति काल में भगवान का नाम लेते हैं, रोगी होने पर तपस्या करते हैं, निर्धन अत्यन्त विनय का आचरण करता है तथा वृद्धा होने पर नारी पतिव्रता हो जाती है।

लक्ष्मीधर के ध्यान से चक्रेश्वरी देवी का आसन चलायमान हुआ। उसने प्रकट होकर कहा - भक्तामर स्तव के छत्तीसवें श्लोक का स्मरण कर उससे पानी अभिमन्त्रित करो। उस पानी को इस दावानल पर छिडकना। तत्काल यह भयंकर दावाग्नि उपशान्त हो जायगी। देवी कथनानुसार शीघ्र छतीसवें श्लोक के जाप से पानी अभिमन्त्रितकर उस दावानल पर सिंचा। उसी समय दावानल शान्त हो गया। सब लोग आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने सोचा कहीं हम सपना तो नहीं देख रहे हैं? सबने लक्ष्मीधर सार्थवाह को बार-बार धन्यवाद दिये। अहो! आप महान् हैं। आपने हमको साक्षात् मौत से उगारकर एक नया जीवन दिया है। हम आजीवन आपके उपकार को नहीं भूलेंगे। इस प्रकार उपकार प्रकटकर दावानल के शमन का कारण पूछा। लक्ष्मीधर ने भक्तामर एवं जैनधर्म का महात्म्य दर्शाया। जैसे बादलों के द्वारा दावानल शान्त किया जाता है वैसे ही आधि, व्याधि, विरोध, बाधा के कारण धर्म के द्वारा शान्त किये जाते हैं। इसलिए जीवन में धर्म को प्राथमिकता देनी चाहिए।

उसकी बात सुनकर सभी लोग जैनधर्म के प्रति आदरवाले हुए। नया जीवन दान एवं साक्षात् प्रत्यक्ष प्रभाव से कौन व्यक्ति भला विश्वास न करे? क्रम से सार्थ महानगर में पहुँचा। वहाँ क्रय-विक्रय कर अति धन उपार्जितकर वापस अपने नगर में लौटा। अब धर्मकार्य में अधिक प्रवृत्त हुआ। साक्षात् मौत के मुख से निकलकर

आने से स्वयं को प्रकृति के द्वारा प्रतिबोध होने पर धर्म की लालसा बढ़ी और धन पर की लालसा घट गयी। अब अपने नगर में ही त्रिवर्ग का जिनवचन कथन अनुसार साधने में रत बना। अपने पुत्र पर व्यवसाय की जिम्मेदारी सौंपता हुआ धन्धे से परे रहने लगा। एक दिन उस नगर में भयंकर आग लग गयी। चारों ओर भाग-दौड़ मच गयी। लक्ष्मीधर ने शीघ्र वहाँ पहुँचकर भक्तामर के छत्तीसवें श्लोक से पानी अभिमन्त्रितकर अग्नि पर सिञ्चन किया। तत्काल अग्नि शान्त हो गयी। राजा उसके इस कृत्य से अत्यन्त खुश हुआ। उसने जैन धर्म को स्वीकार किया और लक्ष्मीधर को धार्मिकशेखर माना। इस प्रकार लक्ष्मीधर जिनशासन की प्रभावना करता हुआ सर्व सुख एवं कीर्ति का भाजन हुआ।

प्रश्न : महाश्रावक की व्याख्या क्या?

एवं व्रतस्थितो भक्त्या सप्तक्षेत्र्यां धनं वपन् ।
दययाचातिदीनेषु महाश्रावक उच्यते ॥

इस प्रकार व्रत में स्थित भक्तिपूर्वक सात क्षेत्रों में धन व्यय करनेवाला एवं करूणा पूर्वक अनुकंपा करनेवाला महाश्रावक कहा जाता है।

प्रश्न : धर्माचार्य कौन?

जो जेहा सुद्धधम्मंमि, ठाविओ संजएण गिहिण वा।
सो चेव तस्स जायइ, धम्मगुरू धम्मदाणाओ ॥१॥

जिस आत्मा को जिस साधु या श्रावक ने शुद्ध धर्म को प्राप्त करवाया हो वही धर्मदान के कारण उसका धर्मगुरु है।

प्रश्न : क्या श्रावक अन्य दर्शनियों के तीर्थों में जा सकता है?

वेसायिहेसु गमणं, जहा विरुद्धं महाकुल वहूणं ।
जाणाहि तहा सावय, सुसावगाणं कुतित्थेसु ॥

जैसे उत्तम कुलवधू को वेश्या के घरों में जाने का निषेध है वैसे हे श्रावक! सुश्रावकों को अन्य दर्शनियों के स्थानों में जाना विरुद्ध है। ऐसा समझना।

सप्तत्रिंशत्तम श्लोक : रक्तेक्षणं...

भावार्थ : जिस पुरुष के हृदय में आपकी नाम रुपी नागदमनी रही हुई है वह पुरुष, लाल नेत्रवाले, मदोन्मत्त कोयल के कण्ठ जैसे श्यामवर्णवाले, क्रोध से उद्धत हुए, ऊँची फणावाले और सन्मुख आते ऐसे सर्प को शंका रहित हुआ अपने दोनों पैरो के द्वारा आक्रमण (स्पर्श) करता है।

सप्तत्रिंशत्तम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा :

नर्मदा नदी के तट पर 'नर्मद' नामक नगर था। उस नगर में सर्व श्रेष्ठिओं में श्रेष्ठ ऐसा महेभ्य नामक श्रेष्ठी था। वह जैनधर्म के विषय में अति श्रद्धावान था। उसकी सब कलाओं में निपुण और गुणातिशय से पूर्ण, दृढव्रता नामक पुत्री थी। वह भी सुदेव-गुरु एवं धर्म की अतीव अनुरागिणी थी। बचपन से ही रात्रीभोजन, कन्द-मूल, अभक्ष्य वस्तुओं से दूर थी। नित्य भक्तामर स्तव का पाठ करती थी। जैनधर्म के गहन विषयों पर अध्ययनकर उसका सम्यक्त्व निश्चल हो चूका था। आये दिन महेभ्य सेठ से दूर-दूर विदेश से व्यापारी मिलने के लिए आया करते थे। धन्धा लम्बा-चौड़ा होने के कारण उसकी पहचान एवं कीर्ति भी चारों दिशाओं में फैली हुई थी। उसका नाम सुनकर व्यापारी स्वयं सौदे के लिए सामने से मिलने आते थे। एक दिन उस नगर में व्यापार के लिए कर्मण नामक महाधनिक आया। बड़े-बड़े सौदे के लिए लोगों ने उसे महेभ्य श्रेष्ठी से मिलने को कहा। कर्मण ने महेभ्य से मिलकर सौदा तय किया। कुछ दिन कर्मण उसी नगर में रुका। महेभ्य और कर्मण की गाढ़ मैत्री हो गयी थी। नित्य दुकान पर आना-जाना लगा रहता था। एक दिन श्रेष्ठी ने उसे अपने घर पर भोजन के लिए निमन्त्रित किया। अगले दिन भोजन के लिए श्रेष्ठी के घर पहुँचा। घर की शोभा देख आश्चर्यचकित हुआ कि वास्तव में महेभ्य ने अपने नाम को सार्थक कर दिया। श्रेष्ठी और कर्मण भोजन के लिए बैठे। विविध प्रकार की मीठाइयाँ, व्यञ्जन आदि पिरसे जा रहे थे। अचानक दृढ़व्रता का वहाँ से गुजरना हुआ। उसके रुप को देखकर कर्मण विचार में पड़ा कि मैं कहीं देवलोक में तो नहीं बैठा हूँ। खाना भूलकर उसे देखता ही रह गया। दृढ़व्रता अपने पिताजी से मिलकर वहाँ से चली गयी। कर्मण बाहर से भोजन कर रहा था। किन्तु उसके दिमाग में तो दृढ़व्रता का रुप घूम रहा था। सोच रहा था - विधाता ने फुरसत के समय बनाया है इसे। अहो! अप्सरा भी इसके रुप को देखकर लज्जित हो जायगी। हिरणी जैसी आँखें, गुलाबी होठ, दूध समान गौरवर्ण, सुड़ौल शरीर सब मिलकर ऐसा लगता है कि कोई परी इस धरती पर उतर आयी है।

जैसे-तैसे खाना पूरा कर श्रेष्टी से विदाई लेकर अपने निवास स्थान पर आया। वहाँ अपने स्वधर्मी मित्र के साथ रहता था। घर आकर पलंग पर लेट गया। उसकी नजरों के आगे वही दिव्य रूप तैर रहा था। लेटा-लेटा करवटे बदल रहा था। उसका मन अत्यन्त बेचैन हो गया था। उसकी यह हालत देखकर मित्र ने पूछा - क्यों दोस्त! आज कुछ बेचैन दिखायी दे रहे हो? क्या बात है? कर्मण ने सारी बात अपने मित्र से कहकर दृढव्रता का हाथ अपने लिए श्रेष्टी के पास मांगने को कहा। मित्र बोला कर्मण! ख्वाब देखना बन्ध करो और भूल जाओ उसे। महेभ्य श्रेष्टी अत्यन्त जैनधर्मी है। अपने साधर्मिक के सिवाय अपनी बेटी का हाथ किसी अन्यधर्मी के हाथ में नहीं देगा। कर्मण ने चाल चली। जैन साधुओं के पास जाकर कपटी श्रावक बनकर सब विधि विधान सिख लिये। नित्य दर्शन, पूजन, वन्दन आदि क्रियाएँ करने लगा। रात्रीभोजन एवं अभक्ष्य का भी दिखावे के लिए त्याग कर दिया। कपटी श्रावक बनकर धन-खान-पान-वस्त्र-दान देने लगा। श्रावकों से मित्रता की। श्रावकों के आगे बड़े-बड़े महान कार्य करने लगा। उनके साथ जैनधर्म की चर्चा करता। उसकी उन क्रियाओं से श्रावक अत्यन्त प्रशंसा करते फिरते थे कि कर्मण जैसा दानी एवं जैनधर्मी विरले ही हैं। कहा भी है - खरीदारी, विवाह, संकट, शत्रुभय, नारी, गरीब, स्वजन, यशस्कर कार्य, मित्रसंग्रह में धनव्यय नहीं गिना जाता है। अब तो घर-घर में कर्मण की प्रशंसा होने लगी। महेभ्य के आगे भी हर रोज उसके प्रशंसा की बाते होने लगी। मौका देखकर कर्मण ने श्रेष्टी के पास कन्या की याचना की। कुल, शील, सनाथता, विद्या, वित्त, वधु, वय ये सात देखकर कन्या देनी चाहिए और फिर तो भाग्यवश होती है कन्या। इस प्रकार विचारकर, कर्मण में सभी गुण मानकर अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया। कन्यादान में विपुल धन दिया। कुछ दिन उसी नगर में सुखोपभोग कर पश्चात् अपने ससुर से विदाई लेकर दृढव्रता को साथ लेकर अपने नगर की ओर चला। कुछ दिन में अपने नगर पहुँचा। घर आये कर्मण ने वापस अपने धर्म का आश्रय लिया। दृढ़व्रता समझ गयी कि मैं और पिताजी दोनों ठगे गये। कोई बात नहीं मैं अपना धर्म प्राण संकट में आने पर भी पालूँगी। इस प्रकार विचारकर रात्रीभोजन, कन्दमूल आदि नहीं खाती और न ही मिथ्यादृष्टि देवों को नमस्कार करती थी। सास-ससुर सभी उसे समझाते किन्तु उसने उनकी एक नहीं सुनी। सबके मनभेद बढ़ने लगे। सासु जो मन में आया वह कहने लगी। किन्तु दृढ़व्रता तो सासु की बात गौण समझकर अपने कार्य में लग जाती। कभी पलटकर जवाब नहीं देती

थी। इससे सासु का गुस्सा और बढ़ जाता था। सासु ने अपने पुत्र से कहा - यह अपने धर्म का पालन नहीं कर रही है। अब तू ही इसे समझा। कर्मण ने दृढ़व्रता से कहा - प्रिये! अपने कुलोचित धर्म कर, स्त्रियाँ पति के मार्ग को अनुसरने वाली होती हैं। पति का जो धर्म वही पत्नी का भी। इसलिए मेरी बात मान और माताजी से क्षमायाचना मांगकर अपने धर्म का पालन कर। किन्तु दृढ़व्रता ने एक नहीं मानी। लाख समझाने की कोशिश भी बेकार हुई। अपने धर्म का पालन नहीं करती देख कर्मण ने दूसरा विवाह कर लिया। अब दोनों के घर एक एक दिन के भोजन की बारी रखी। एक दिन दृढ़व्रता के यहाँ तो दूसरे दिन सपत्नी के यहाँ। दृढ़व्रता कर्मण को रात्री में भोजन नहीं देती थी। मांगने पर समझाती कि उल्लू, कौंआ, बिल्ली, गीध, सुअर, सर्प, लोमडी, बिच्छू, चामचीडी इन सब के भव रात्री भोजन से मिलते हैं। रात्रीभोजन से अत्यन्त जीवहिंसा होती है जिससे जीव की दुर्गति हो जाती है। रात्रीभोजन नरक का पहला द्वार कहा गया है। इस प्रकार समझाने पर भी वह नहीं मानता था। अपने धर्म को सत्यधर्म मानता था। उसे ये सब बातें बेवकूफी भरी लगती थी। वीतराग स्तोत्र में भी कहा है कामराग और स्नेहराग जल्दी दूर किये जा सकते हैं किन्तु अत्यन्त पापी यह दृष्टिराग तो सन्तों के भी दुःख से उच्छेद किया जा सके वैसा है। बार-बार खाना माँगने पर भी जब रात्री के समय दृढ़व्रता ने नहीं पिरोसा तब खिन्न होकर अपनी दूसरी पत्नी माहेश्वरी के पास चला गया। माहेश्वरी ने अत्यन्त प्रेम से उसे खाना पिरोसा। भोजन करते हुए उसने दृढ़व्रता के विरूद्ध कान फूंकने शुरु किये। पतिदेव! यह भिन्नधर्मवाली दुराचारिणी दिखायी देती है। अपने देव, गुरु को नमन करने के बहाने न जाने कहाँ जाती है किसे पता? मुझे तो यह मन्त्र-तन्त्र की जानकार भी दिखायी देती है। मौका देखकर आप पर कार्मण प्रयोग कर देगी। फिर स्वेच्छा से अपने यारों के साथ गुलछर्रे उड़ायेगी। आपको और आपके कुल को भी कलंकित करेगी। आप जरा मेरा भी विचार कीजिए कि मैं किसके सहारे जिऊँगी। अगर आपको कुछ हो गया तो मैं कहीं की नहीं रहूँगी। इसलिए जो उचित लगे वह करे। मैंने आपको पहले से ही सावधान कर दिया है कि अपने खानदान का नाम बदनाम न हो। कुछ होने के बाद केवल हाथ मलते रह जायेंगे। अपनी जान पर खतरा एवं कलङ्क के डर से कर्मण दृढ़व्रता को मारने का उपाय सोचने लगा। अत्यन्त भयंकर काले सांप को लाकर एक घड़े में रख दिया। रात को घड़ा घर के अन्दर रख दिया। सुबह दृढ़व्रता भक्तामर स्तव का पठन कर रही थी। कर्मण ने कहा घड़े के अन्दर मणिओं की माला रखी है, जा उसे

ला। पाठ स्मरण करते-करते माला लाने के लिए उठी। भक्तामर के सैतीसवें श्लोक का स्मरण करते उसने हाथ घड़े में डाला। मानो रस्सी अथवा माला के समान उस सर्प को पकड़कर बाहर लाकर पति के हाथ में देने के लिए उसकी ओर बढ़ी। भक्तामर के प्रभाव से उस सांप ने दृढ़व्रता को नहीं डंसा। अपनी ओर आती देखकर कर्मण घबरा गया। दूर से चिल्लाने लगा प्रिये! फेंक दे इस सर्प को। दृढ़व्रता ने वह सर्प दूर फेंक दिया। उसकी चिल्लाहट सुनकर दृढ़व्रता के सास, ससुर, दियर, ननंद, सौतन सब दौड़े आये देखने के लिए कि क्या हुआ? सबने देखा कि एक सर्प जमीन पर पडा है और वह स्तम्भित हो गया है। आँखें हिला रहा था, जीभ निकालकर फुत्कार कर रहा था किन्तु चलने के लिए समर्थ नहीं था। दूसरी पत्नी माहेश्वरी ने कहा - पतिदेव! मैं नहीं कहती थी कि यह कामण-टामण करती है। देखा आपने कैसे सर्प को स्तम्भित कर दिया? अब यह डायन हम सब पर भी जादू कर सबको खा जायगी। सभी घरवाले उसकी बात में साक्षी पूरने लगे। दृढ़व्रता तो भक्तामर स्तव का स्मरण करती बिलकुल मौन थी। इतने में आकाशवाणी हुई। रे रे पापिओं! क्या सोच रहे हो? यह दृढ़व्रता पतिव्रता है और उभय लोक के हितकारी ऐसे धर्म की आराधना कर रही है। इसके धर्म के प्रभाव से ही सर्प स्वयं स्तम्भित हुआ है। जो इसका बिगाड़ना चाहेगा वह अपने पाप से स्वयं नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। जो इसकी बात मानेगा वह उभय लोक में सुखी एवं नहीं माननेवाला दुःखी होगा। इस प्रकार कहकर देवी तिरोभूत हुई। सब उससे माफी मांगने लगे। सपत्नी ने चरणों में गिरकर रोती हुई क्षमायाचना मांगी। उसके बाद दृढ़व्रता ने धर्म का उपदेश दिया-राग-द्वेष रहित जो देव वही सुदेव, पंचमहाव्रतधारी गुरु ही सद्गुरु एवं दया प्रधान धर्म ही वास्तविक धर्म है। षट्कर्म में रत श्रावक ब्राह्मण ही है। देवपूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप तथा दान गृहस्थों के षट्कर्म है जो प्रतिदिन करणीय है। शुद्धि से ही धर्म करना चाहिए किन्तु वास्तविक शुद्धि सत्य, तप, इन्द्रियनिग्रह, सर्वप्राणिदया ये मुख्य शौच तथा जलशौच गौणशौच है। श्राविका को पांच बातों में जयणा रखनी चाहिए-खाण्डना, पिसना, जलभरना, झाडू निकालना और रसोई में। सबने धर्म का मर्म समझा। उसका स्वीकार किया। एवं दृढ़व्रता के समान सभी शनैः शनैः दृढ़धर्मी बने, इस प्रकार दृढ़धर्मा ने जैनधर्म की महान प्रभावना की।

अष्टत्रिंशत्तम श्लोक : वलगत्तुरङ्ग...

भावार्थ : युद्ध में दौड़ते घोड़ोंवाला, हाथिओं के गर्जारव (तथा) योद्धाओं के भयंकर नादवाला बलवान भी ऐसे राजा का सैन्य आपका नाम ग्रहण करने से ही, उदित होते हुए सूर्य की किरणों के अग्रभाग के द्वारा विंधे हुए अंधकार के समान शीघ्रता से नष्ट होता है।

एकोनचत्वारिंशत्तम श्लोक : कुन्ताग्रभिन्न...

भावार्थ : भाले के अग्रभाग द्वारा भेदित हाथी के रुधिर रूपी जलप्रवाह में शीघ्रता से प्रवेश करके तैरने में आतुर हुए योद्धाओं से भयंकर ऐसे युद्ध में लड़ाई में न जीत सके ऐसे शत्रुओं को जीतकर भी आपके चरण कमल के वन के आश्रय करनेवाले मनुष्य जीत ही प्राप्त करते हैं।

एकोनचत्वारिंशत्तम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा :

मथुरा नगरी में रण में विजय प्राप्तकर ध्वज को लहरानेवाला रणकेतु नामक राजा था। उसके छोटे भाई का नाम गुणवर्मा था। गुणवर्मा जिनधर्म में रक्त तथा दुष्ट पाखण्डिओं के परिचय से दूर रहता था। वह नित्य भक्तामर स्तोत्र का जाप करता था। जिनेश्वर की वाणी पर विशेष प्रीति होने से दान, भोग, परोपकार, दयाभाव आदि गुण स्वयं ही गुणवर्मा के मन में स्फुरायमान होते थे। उसकी परोपकार परायणता देखकर नगरजन उसे अत्यन्त चाहते थे। उसकी प्रशंसा नगर में चारों ओर होती थी। सेनापति, मन्त्री, राजपुरोहित आदि बड़े लोग उसकी गम्भीरता देखकर एक राजा की तरह उसका सम्मान करते थे। गुणवर्मा अत्यन्त पराक्रमी और धैर्यवान भी था। अनेक महासंग्रामों में अपने भाई का साथ देकर, दुश्मन राजा को पराजित करने में वह सहायक बना था। युद्ध में दोनों भाइओं की जोडी राम-लक्ष्मण की याद दिलाती थी। रणकेतु से ही उसने युद्ध के पैंतरे सिखे थे। इसलिए अपने भाई की प्रत्येक आज्ञा शिरोधार्य करता था। दोनों भाइओं में गाढ़ स्नेह था। गुणवर्मा अपने ज्येष्ठ भ्राता को पिता तुल्य मानकर उनका उचित आदर करता था। उनके स्नेह को देखकर रणकेतु की पत्नी अत्यन्त ईर्ष्या से जलकर खाख हो रही थी। अपने देवर की अतिप्रशंसा श्रवण उसके लिए असह्य हो रही थी। गुणवर्मा का पत्ता काटने की फिराक में थी। किसी मौके की तलाश में थी। किन्तु कोई उसका साथ नहीं दे रहा था। सब की गुणवर्मा के ऊपर नेक नजर देखकर, सोचा अब किसी के भरोसे पर निर्भर रहने से कोई काम नहीं बनेगा। अब मुझे ही कुछ करना पड़ेगा।

एक दिन पट्टराणी ने रणकेतु से कहा प्रियतम इस गुणवर्मा की कीर्ति चारों ओर फैल रही है। प्रजा आपकी बजाय इसको अधिक चाहती है। बन्दीजन भी शहर में इसकी प्रशंसा के गीत गाते फिरते हैं। थोड़े ही दिनों में यह आपका राज्य हरणकर आपको कारागृह में डाल देगा और स्वयं मथुरा का राजा बनकर सिंहासन पर आसीन हो जायगा। कारागृह में आपको तड़पा-तड़पाकर मार डालेगा कि कहीं शत्रु जिन्दा रहेगा तो मेरी जान और राज्य अधिकार पर खतरा मंडराता रहेगा। राज्य को हरण करनेवाला बन्धु भी दुश्मन है। तुल्य धनवान, तुल्य शक्तिवान, मर्मज्ञ, समान व्यवसायी, अर्धराज्य के हकदार ऐसे मित्र को भी जो कोई व्यक्ति न मारे तो उस मित्र के द्वारा समय पर वह मारा जाता है। इसलिए प्रियतम! दूर करो इस बला को अपने मार्ग से।

राजा ने कहा - देवी! मैं अपने भाई को किस प्रकार मारूँ? मेरा अपना एक यही तो है। मेरा पिता के समान आदर करता है और तू कहती है कि दुश्मन है। तू किसी भ्रम में पड़ी है। व्यर्थ के विचार छोड़ और मुझे ऐसे अकार्य के लिए प्रेरित मत कर। संसार में जैसे माता दुर्लभ है वैसे भाई भी दुर्लभ है। पत्नी और पुत्र तो हर जगह मिल जायेंगे किन्तु वह स्थान दुर्लभ है जहाँ भाई हो। वैसे भी गुणवर्मा कितनी धार्मिक वृत्ति का प्राणी है। ऐसा परोपकार परायण मेरा भाई मेरे घात का विचार कर ही नहीं सकता। हम दो भाइयों के बीच दिवार बनने की कोशिश मत कर वरना तू भी पछतायेगी और मैं भी। पट्टरानी ने कहा - आप भी कितने भोले हैं। उसके गुण तो सब दिखावे के हैं सभी को वश करने के लिए। अपने गुणों के द्वारा सबको मोहितकर, उन सबका प्रियपात्र बनकर आपको कारागृह में डाल देगा। प्रजाजन और राजजन उसके पक्ष में होने से विद्रोह करनेवाला कोई नहीं होगा। जिससे बड़ी आसानी से राजा बन जायगा। आपका आदर भी भरोसा दिलाने के लिए करता है कि मैं नमकहलाल हूँ जिससे आपकी इस पर शङ्का न जाये। मन्त्री और सेनापति भी प्रतिदिन इससे मिलने आते हैं। मुझे जरूर दाल में कोई काला दिखायी देता है। कोई बडे षड्यन्त्र की आगाही लग रही है। आपको तो इस नगर में कोई पूछता ही नहीं। आपके सामने से ही यह राज्य छीन लिया जायगा तो अपने पुत्र के हकदारी की बात ही विलीन हो जायगी। यदि आप इसे भाई समझकर नहीं मारना चाहते तो कोई बात नहीं। आप केवल इतना करीये कि इसे देश से निकाल दीजिए जिससे अपने पर मंडरा रहा खतरा दूर हो जाये। उसकी बात सुनकर रणकेतु का मन चंचल हुआ। भाई पर से प्रेम कम हुआ। उसे देश से निकालने का

विचार करने लगा। तब तक ही भाई की मनोभूमि पर स्नेह रूपी वन की श्रेणी सुन्दर लगती है जब तक स्त्री के वियोगवाली वचन रूपी अग्नि से वे वन नहीं जलते। राजा की बेचैनी बढ़ गयी। अपने राज्य ग्रहण का भय सताने लगा। पूरी रात आँखों में बितायी। सुबह होते ही सेवक को आदेश दिया - जाओ और जाकर कह दो गुणवर्मा से कि इस देश की सीमा छोड़कर कहीं दूर चला जाये। अगर उसने इस आदेश का पालन शीघ्रतम नहीं किया तो अंजाम बहुत बुरा होगा। सेवक विचार में पड़ा कि आज राजाजी को क्या हो गया है? कहीं किसी भूत-प्रेत ने तो इनके शरीर में प्रवेश नहीं किया? इतना विपरीत आदेश कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि मामला क्या है? सेवक इन विचारों में था कि रणकेतु बोला - कौनसे विचारों में हो तुम? जाओ जल्दी जाकर मेरा आदेश गुणवर्मा को सुनाकर आदेश पर अभी से अमल करने को कहो। सेवक विचार करता-करता गया - अपने को तो केवल राजा की आज्ञा पालनी है। क्यों और कैसे का प्रश्न मैं नहीं कर सकता किन्तु मामला कुछ गड़बड़वाला नजर आ रहा है। गुणवर्मा के कमरे में जाकर उसे राजादेश सुनाया। आदेश सुनकर आश्चर्य हुआ कि यह कैसी असंमजसवाली बात है? गुणवर्मा सोचने लगा - अब पराक्रम दिखाने का अथवा समझाने का समय नहीं है। शायद स्त्री की बातों में आकर यह कदम भरा है। **अशुभ समय का कालहरण ही श्रेष्ठ प्रतिकार है। समय सब घावों को भर देता है।** आज नहीं तो कल भाई की बुद्धि अवश्य ठिकाने आयगी। अपने किये पर पछतावा करना पड़ेगा। इस प्रकार विचारकर मथुरा से निकल गया। निकलते समय वर्षा ऋतु का समय प्रवर्तित था। सब दिशाएँ अन्धकार से आच्छादित थी। मेघ गर्जना कातर हृदय को कंपा देती थी। राजा की प्रीति के समान क्षणभर बिजली चमककर दृष्टि से ओझल हो जाती थी। मूसलाधार वर्षा शुरु हो गयी थी। मयूर का ताण्डव शुरु हो गया था। लोग भीगी बिल्ली के समान घर में सिकुडकर बैठे थे। गलियों में पानी का पूर बह रहा था। ऐसी परिस्थिति में भी राज्य छोड़ना अपने लिए हितकारी समझकर तत्क्षण वहाँ से निकल गया। वह वन में घूमता हुआ अपने मन के समान ऊँचे, दान के समान विशाल, कृत्य के समान सफल, भाव समान निर्मल, झरने के जल से आर्द्र ऐसे पर्वत पर चढ़ा। उस पर्वत पर एक गुफा में रहता हुआ कन्द-फल आदि का भक्षण करता हुआ, तीनों काल भक्तामर स्तव का पाठ करता दिन व्यतीत कर रहा था।

एक दिन रात के समय पंचपरमेष्ठी मन्त्र का स्मरणकर, भक्तामर के

उन्चालीसवें श्लोक का स्मरण कर रहा था। काजल के समान अन्धकारमयी रात्री में भी उस गुफा में अचानक दिव्य उद्योत हुआ। चक्रेश्वरी ने प्रकट होकर वरदान मांगने को कहा। गुणवर्मा ने विशाल राज्य जो किसी के द्वारा भी न जीता जा सके ऐसे राज्य का वरदान मांगा। देवी राज्य एवं अजेय का वर देकर अन्तर्लीन हुई। अब गुणवर्मा वन में शस्त्र अभ्यास करता हुआ दिन बिताने लगा। वर्षाऋतु व्यतीत हुई और शरद् ऋतु का आगमन हुआ।

एक दिन उस जंगल से रणकेतु दूसरे देश को जीतने के लिए जा रहा था। अचानक उसकी नजर पर्वत पर शस्त्र अभ्यास करते हुए गुणवर्मा पर पड़ी। देखते ही उसका सुषुप्त वैर जागृत हुआ। उसने विचारा कि इसे देशनिष्कासन की सजा देकर बहुत भारी गलती की है मैंने। इसे तो तब का तब यमलोक पहुँचा देना चाहिए था। इस वन में उत्कट अभ्यास कर रहा है। भविष्य में सैन्य संबल इकट्ठाकर मेरे देश पर धावा बोल सकता है। जब तक छोटे से छोटा शत्रु मजबूत हो तब तक खतरा मंडराता रहता है। मौका देखकर वह अपना काम निकाल लेता है। उसने सेना को आदेश दिया-शस्त्राभ्यास करनेवाले उस गुणवर्मा को पकड़कर मौत के घाट उतार दो। सेना ने उस अकेले को घेर लिया। अब घमासन युद्ध शुरु हुआ। कुमार ने अपने पराक्रम से सूर्य जैसे अन्धकार समूह का नाश करता है वैसे ही क्षणभर में सेना को परास्त कर दिया। अपनी सेना की बुरी तरह पिटाई देखकर रणकेतु स्वयं युद्ध के लिए सज्ज हुआ। दोनों के बीच शस्त्र, खड्ग, बाण, दण्ड युद्ध हुए। उनके बीच भयंकर युद्ध देखकर सेना देखती रह गयी। कुमार ने समस्त शस्त्र रहितकर रणकेतु के धनुष्य को भी बाण के प्रहार से तोड़ दिया। वह विलक्षण होकर शस्त्रार्थ इधर-उधर ताक रहा था कि गुणवर्मा ने दो बाण छोड़कर रथ के दोनों पहियों को तोड़कर जमीन पर गिरा दिया। चक्रेश्वरी के प्रसाद से कैसा भी दुर्जय शत्रु क्यों न हो किन्तु गुणवर्मा के लिए साध्य था। उसके अजेय पराक्रम को देखकर वनदेवताओं ने भी जयजयारवकर कुसुमवृष्टि की। किन्तु कुमार कुलीनता रूपी अंकुश से प्रेरित नम्र रहा। रणकेतु की नजर कुमार पर पड़ी। वह विचारने लगा-अहो! इसकी नम्रता। जीतने पर भी गर्व से उन्नत मस्तक न होकर विनय से नतमस्तक है। मेरे सारे भ्रम इसने एक क्षण में तोड़ दिये। इसके प्रति की गलतफहमी दूर हुई। फलवाले वृक्ष नमते हैं, कुलीन व्यक्ति नमते हैं किन्तु शुष्क काष्ठ और मूर्ख भेदे जाते हैं किन्तु नमते नहीं। इसने मुझे परास्त किया। फिर भी मेरे प्रति विनय दर्शा रहा है, इसका मतलब इसका स्नेह मेरे प्रति का कृत्रिम नहीं

किन्तु नैसर्गिक है। मुझे धिक्कार है कि राज्य के लोभ में अन्धा होकर गुणों की खान गुणवर्मा पर शंकाकर उसको मारने की जघन्य प्रवृत्ति की। यदि मैं स्त्री की बातों पर यकीन न करता तो मुझे आज यह दिन देखना नहीं पड़ता। **धिक्कार हो स्त्रीजाति को जो स्वार्थवश पुरुष को अनर्थ की परंपरा में डालती है। स्त्री कटाक्ष एवं वचन से डोलायमान स्त्रीलम्पट कौन-कौन से अकार्य नहीं करता।** राज्य और स्त्री ही सर्व कलह की जड़ है। दुनिया में सम्राट अधिराज के पराजय में मुख्य भूमिका निभावनेवाले ये दो ही हैं एक राज्यलोभ और दूसरी स्त्री। (व्यंग में कहा जाता है कि ब्रह्मा पुरुष, पेड़, पर्वत आदि संसार का निर्माणकर चैन से बैठा था किन्तु जब से इस स्त्री का निर्माण किया है तब से उसकी नींद हराम हो गयी। एक समय की भी फुरसत नहीं है। बस केवल पापियों को सजा देने में दिन बीत जाता है।) स्त्री आसक्त सचतेन पुरुष भी अचेतन हो जाता है। कार्य कुछ करता है और मन में वही सूरत घूमती रहती है। तब तक ही पुरुष सचेतन है जब तक स्त्रिओं के द्वारा कटाक्ष से नहीं देखा गया। स्त्री की आँखों में वशीकरण मन्त्र निहित है। भोगी से लेकर योगी तक भी उसके सिंकजे में फस जाते हैं। मैंने भी कामान्ध बनकर अपने कुल की धवल कीर्ति पर काला धब्बा लगा दिया है। धन्य है मेरे पिताजी जिसने समय पर वानप्रस्थ स्वीकार कर दिया था। वे पूर्वजों के मार्ग को अनुसरने वाले थे। राज्य लोभ एवं स्त्रीवश से परे रहकर न्याय-नीति एवं विवेकपूर्वक कार्य करने वाले थे। उन यशस्वी की परंपरा में मेरे जैसा कलङ्की उत्पन्न हुआ। **मोक्ष की पदवी दूर नहीं यदि पुरुष स्त्री से दूर रहे।** मैं भी अब इस राज्य पर गुणवर्मा का अभिषेककर पूर्वजों के मार्ग का अनुसरण करूँ। अपने किये का प्रायश्चित्त भी मुझे गुणवर्मा से क्षमायाचना मांगकर करना पड़ेगा। इस प्रकार विचारकर गुणवर्मा से क्षमायाचना मांगकर सम्मानपूर्वक नगर में ले आया। मन्त्री के साथ सलाह-मश्वीरा कर गुणवर्मा को सिंहासन पर बिठाकर उसका अभिषेककर स्वयं वनवास स्वीकारने वाला हुआ। गुणवर्मा ने मथुरा में रहकर अपने भतीजों को राज्य भाग देकर उनको राजा बनाकर एक छत्रवाला राज्य निष्कण्टक पाला। निरन्तर गुरु उपदेश को श्रवणकर अनेक तीर्थयात्रा, जिनालय निर्माण करवाकर मनुष्य भव को सफल बनाया। जैनधर्म की महान प्रभावना की। पर्वतिथिओं में बहुत पापों को खपानेवाले ऐसे सामायिक, पौषध, आदि का निरतिचार पूर्वक पालन करता था। चक्रेश्वरी के वरदान से सभी राजा उसके दास बने और आजीवन अजेय रहकर चिरकाल तक राज्य सुख भोगकर जैनशासन की प्रभावना से निकट मोक्षगामी बना।

चत्वारिंशत्तम श्लोक : अम्भोनिधौ...

भावार्थ : भयंकर मगरमच्छ के समूहवाले, पाठीन-पीठ नामक मत्स्यवाले, भयंकर तथा अत्यन्त वडवानलवाले और क्षुभित ऐसे समुद्र में उछलती तरंगों के शिखर पर चढ़ जाते वाहनवाले लोग आपके स्मरण से त्रास बिना चले जाते हैं।

चत्वारिंशत्तम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा :

धन, स्वर्ण, वस्त्र, रत्न से अलकापुरी समान, नन्दनवन के भी ईर्ष्या का कारण ऐसी मनोहर उद्यानवाली, देवी के रूप के समान नगर की स्त्रिओं से शोभायमान, श्री का निवास स्थान ऐसी ताम्रलिप्ति नामक नगरी थी। वहाँ अत्यन्त धनिक धनावह नामक श्रेष्ठी रहता था। उसने एक बार निर्मल मनवाले ऐसे श्री जिनेश्वर सूरि की वाणी सुनी - सुरेन्द्रों से पूजित तीर्थंकर वन्द्य हैं। उनकी निर्मल पूजाकर सन्मुनिओं को वन्दनकर उनके चरणों की सेवा करनी चाहिए तथा उनके पास से जिनेश्वर कथित वचन का श्रवण करना चाहिए। सत् शील का पालन एवं यथाशक्ति निर्मल तप का आचरण करना चाहिए। पञ्चपरमेष्ठी का स्मरण एवं द्वादश भावनाओं पर सूक्ष्म चिन्तन करना चाहिए। उसमें भी जीवदया सर्वत्र सारभूत है। जीवों को अभयदान देनेवाले देवेन्द्र, चक्रवर्ती आदि की ऋद्धि का उपभोगकर शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं। यदि कोई व्यक्ति सोने का मेरु पर्वत दान में दे दे अथवा संपूर्ण वसुन्धरा का दान कर दे या सागर जितने रत्न दान कर दे तो भी जीवदया की तुल्यता को नहीं प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार देशना सुनकर प्राणान्त पर भी स्थूल निरपराधी जीवों की हिंसा नहीं करूंगा, न ही करवाऊँगा और न ही करते हुए की अनुमोदना करूँगा का व्रत ग्रहण किया। परम श्रावक बना। भक्तामर का पाठ शुद्धिपूर्वक करता था। एक बार धनावह ने सोचा प्रभूत भी ऐश्वर्य निर्व्यवसायिओं का त्याग-भोग आदि से नष्ट होता है। इस प्रकार विचारकर पर द्वीप योग्य वस्तुओं के द्वारा पांच वाहन भरकर शुभ मुहूर्त पर नारियल आदि से समुद्र की पूजाकर जहाज पर चढ़ा। पांचों जहाज एक साथ रवाना हुए। थोड़े हि दिनों में सिंहल द्विप पर आये। वहाँ जहाजों में रहा हुआ सामान बेचकर मणि, मोती, कर्पूर चन्दन आदि अपने देश में दुलर्भ वस्तुएँ खरीदकर रवाना हुआ। अभीप्सित लाभ हुआ। पांचों वाहन वस्तुओं से भरे थे। क्रम से वाहन सागर में प्रविष्ट होने पर नाविकों ने कहा - श्रेष्ठी यहाँ विकटाक्षी नामक देवी सामुद्रिक यात्रिओं से पशु बलि ग्रहण करती है। अगर उसे बलि न दी जाय तो उत्पातकर जहाजों को समुद्र में डुबो देती है। यदि आप कहें तो पास के गांव से पशु लाकर उसकी बलि दे दूँ? श्रेष्ठी ने कहा - मुझे

पशुघात प्रिय नहीं है। मैं न ही जीवों को मारता हूँ और न ही मारने का आदेश देता हूँ। पाप रहित भोग मैं देवी को चढ़ाता हूँ जिससे वह निर्वघ्न यहाँ से हमको निकलने देगी। इन्द्रियदमन, देव-गुरु की सेवा, दान, विद्या, तप ये सभी अफल हैं जो जीवन में हिंसा है। विघ्नशांति के लिए की हुई भी जीवहिंसा विघ्न के लिए होती है। कुलाचार की बुद्धि से की हुई भी कुलविनाशिनी होती है। इस प्रकार कहते हुए होने पर आकाश में घनघोर बादल छा गये। दुर्वात वहने लगा। देवी का रौद्रताण्डव शुरु हुआ। धनावह यह देखकर भक्तामर के चालीसवें श्लोक में लीन हो गया। नाविक चिल्लाने लगे - सेठजी! अभी ध्यान में बैठने का समय नहीं है। देवी को बलि देने का वायदा कर दो उपद्रव अपने आप शान्त हो जायगा। अपने लिए सभी लोग अधर्म का आचरण करते हैं। यही बुद्धिमत्ता है। आपत्ति के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए। धन से भी पुत्र और पत्नी की रक्षा करनी चाहिए। धन, पुत्र और पत्नी से भी सतत अपनी रक्षा करनी चाहिए। सर्वनाश उत्पन्न होने पर पण्डित आधा छोड़ देता है और आधे से कार्य चलाता है। क्योंकि सर्वनाश दुस्तर है। इसलिए सर्वथा अपनी रक्षा का खयाल रखना चाहिए। देवी के द्वारा पशु बलि दो इस प्रकार कहने पर भी श्रेष्ठी अपने ध्यान से चलित नहीं हुआ। देवी ने जहाजों की स्थिति और बिगाड़ दी किन्तु श्रेष्ठी तो निश्चल भक्तामर के चालीसवें श्लोक में लीन रहा। उत्पात अपने आप विलीन हो गया। विकटाक्षी देवी ने प्रकट होकर धनावह से कहा आँखें खोलो। मैं तुम्हारी श्रद्धा एवं व्रतपालन से खुश होकर तुम्हें ये अमूल्य रत्नों की भेंट दे रही हूँ तथा अपना इच्छित भी मांग। इस प्रकार कहने पर श्रेष्ठी ने कहा आज से पशु बलि बन्ध करवा दो बस यही मेरी इच्छा है। अमृतभोगी देव-देविओं को पशुवध की अभिलाषा निरर्थक पापबन्ध का कारण है। देवी ने उसकी बात अंगीकार की। पांचों वाहन को एक क्षण के अन्दर अपने इच्छित स्थान पर पहुँचा दिये। रत्न बेचकर धनावह धनाढ्य शिरोमणि बना। श्री युगादिदेव के मंदिर का निर्माण कराया। अनेक तीर्थयात्राएँ कर अपना जीवन निर्मल किया। अत्यन्त आनन्द एवं सुख का भाजन बना।

एकचत्वारिंशत्तम श्लोक : उद्भूतभीषण...

भावार्थ : उत्पन्न भयंकर जलोदर रोग के भार से वक्र बने हुए, दया उत्पन्न हो ऐसी दशा को प्राप्त हुए (और) जीवितव्य की आशा बिना के मनुष्य आपके चरण कमल की धूल रूपी अमृत से लेप किये हुए शरीरवाले कामदेव के समान रूपवान होते हैं।

एकचत्वारिंशत्तम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा :

उज्जयिनी नामक नगर में राजशेखर राजा राज्य करता था। उसकी दो पत्नियाँ थी। पट्टदेवी विमला और दूसरी कमला। विमला ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम राजहंस कुमार रखा गया। वह सकल कलाओं में निपुण और शास्त्र अभ्यास में प्रवीण बना। भाग्य की विपरीतता से विमला का अवसान हो गया और कमला पट्टराणी बनी। वह राजहंस पर द्वेष धारण करने लगी। सोचने लगी यह राजहंस सकल कलाओं में पारङ्गत एवं बुद्धिनिधान है। इसके रहते मेरे पुत्र को राज्य प्राप्ति अशक्य है। इसे अपने मार्ग से दूर हटाकर मेरे पुत्र को सिंहासन पर आरूढ़ करना यही श्रेष्ठ उपाय है। उसे मारने के हर संभव उपाय किये किन्तु उससे राजकुमार का बाल भी बांका नहीं हुआ। अब कमला प्रतिक्षण उसको परलोक पहुँचाने का उपाय सोचती रहती। एक दिन उसके हाथ वह स्वर्णिम अवसर लगा जिसका उसे बरसों से प्रतीक्षा थी। एक दिन राजा ने युद्ध के लिए सज्ज होकर सैन्य सहित प्रस्थान किया। कमला ने मौका देखकर राजहंस राजकुमार को भोजन में बहुत रोगों को उत्पन्न करनेवाली औषधि मिश्रित कर दी। कुमार के देह में उस औषधि के प्रभाव से जलोदर आदि अनेक रोग उत्पन्न हो गये। कुरूपता, पेट फूलना, शक्तिहीनता आदि अनेक प्रकार के रोगों से राजहंस का शरीर शिथिल बन गया। कुमार ने बहुत इलाज करवाये किन्तु कुछ फर्क नहीं पड़ा। मान्त्रिक ने कहा आपकी सौतेली माँ ने भयंकर रोगकर औषधि खिलायी है। अब शनैः शनैः ये रोग बढ़कर जान लेवा बन जायेंगे। ये रोग असाध्य है। अब आप केवल प्रभुस्मरण करीये यही आपके लिए उत्तम औषध है। कुमार सोचने लगा यदि यहाँ रहा तो निश्चय से मेरी मृत्यु समय से पहले हो जायगी। घर में ही दुर्जन पुरुष होने पर जीने की आशा किस प्रकार रखी जाय? उसे कोई न कोई छिद्र अवश्य मिल जाता है सहवासी का। इसलिए यहाँ से निकलना श्रेष्ठ है। इस प्रकार विचारकर जीवन रक्षा के लिए कुमार एकाकी निकल पडा। महादुःख से अनेक आफतों का सामना करता हुआ हस्तिनापुर पहुँचा। सायंकाल का समय हो गया था। कोई आसरा नहीं था। गली में एक खाली जगह पर अपना बसेरा कर लिया। हस्तिनापुर में मानगिरि नामक राजा राज्य करता था।

उसकी कलावती नामक पुत्री थी। जैन साध्वियों के पास जिनपूजन, गुरुवंदन, अभयदान, द्वादशतप, भौगोलिक स्वरूप, कर्मसिद्धांत आदि का सविस्तृत स्वरूप समझकर जीवन में आचार का परिणमनकर वह परिपक्व बन चूकी थी। वह चौसठ कलाओं में निपुण थी। तथा भक्तामर स्तोत्र का त्रिसन्ध्य जाप करती थी। एक बार कुमारी राजसभा में बैठी हुई थी। मानगिरि ने अपने नाम को सार्थक करते हुए अहंकारपूर्वक सामन्तों से पूछा - आप किसकी कृपा से राज्यलक्ष्मी का उपभोग करते हो? सभी ने एक स्वर में जवाब दिया राजा की कृपा से। इस बात को सुनकर राजकुमारी के मुख पर हंसी स्फुरायमान हुई। अचानक राजा की दृष्टि राजकुमारी की ओर गयी। उसकी हंसी देखकर राजा ने पूछा - तुम अब अप्रस्ताव के समय पर क्यों हंसी? उसने जवाब दिया - पिताजी ये सामन्त आदि सत्य को जानते हुए भी राजा के उचित प्रवर्ती करते हैं। भले ही वह बिलकुल झूठ और मार्ग विपरीत हो। सेवक जीवित हेतु और उन्नति हेतु दीनतापूर्वक आचरणकर स्वामी के मन के अनुकूल बरतता है। इनकी असत्य वाणी सुनकर मेरे होठों पर हंसी उभर आयी। राजा ने आवेश में आकर पूछा - तो बोल तू किसके सहारे जीवनयापन करती है? उसने जवाब दिया - मेरे कर्मों से। मेरे शुभ कर्म से ही मैं दरिद्र कुल में उत्पन्न न होकर राजघराने में उत्पन्न हुई हूँ। बात सुनकर राजा ने रोष से सुभटों को रोगग्रस्त एवं रङ्क पुरुष को पकड़कर लाने को कहा। सुभट जलोदर रोग से छोटे हो गये हैं हाथ, पैर जिसके, मल से व्याप्त शरीरवाले, ज्वरी, दुःख और दारिद्र के शरण ऐसे राजहंस को पकड़कर सभा में ले आये। उसकी कुरूपता को देखकर राजा अत्यन्त खुश हुआ। तू अपने कर्म सिद्धांत पर अटल है तो ले अब कर्म के द्वारा यह पति तुम्हें प्राप्त हुआ है। अब मेरे दिये हुए सर्व अलङ्कार तजकर, दासी के समान फटे पुराने कपड़े पहनकर इसके साथ पाणिग्रहण कर। मन्त्री आदि सोचने लगे कि यह राजा अयोग्य कर रहा है किन्तु राजा के आगे किसी के बोलने की हिम्मत नहीं हुई। राजा ने कहा- सत्यकर्मवादिनी! अब अपने कर्मों के फल भोग इस प्रकार कहकर केवल पाथेय का इन्तजामकर अपने नगर से निकल जाने को कहा। राजकुमारी बिना किसी हिचकिचाहट के, चहेरे के भाव बदले बिना उसका हाथ थामकर वहाँ से चलती बनी। जाते-जाते राजसभा में बोलती गयी कि हे प्रभो! हम जो समीहित को प्राप्त नहीं करते वह दोष तुम्हारा नहीं किन्तु मेरे कर्मों का है। यदि उल्लू दिन में नहीं देख सकता है तो वह दोष सूर्य का नहीं है। नगर के बाहर एक वृक्ष के नीचे आश्रय लिया। उस समय सर्दी के दिन थे। शाम ढल गयी, रात पड़ गयी। ठंडी ने

अपना रंग दिखाना शुरू किया। ठण्ड के मारे दोनों सिकुड़कर बैठे थे। राजहंस ने कहा - प्रिये! अभी भी वक्त है जा अपने घर जाकर अपने पिता की बात स्वीकार कर ले। मैं पहले से ही रोगी हूँ। मेरे जीवन दीप अब थोड़े दिनों में बुझने ही वाला है। तेरा यह फूलों-सा कोमल शरीर ठण्डी के मारे मुरझा जायेगा। लाड़-प्यार में पली ऐसी तुझे इन जंगलों में न जाने किन-किन विपत्तिओं का सामना करना पड़ रहा है? तेरी और मेरी तुलना कभी संभव नहीं है। कहाँ स्वर्ण और कहाँ पत्थर! क्या कभी हथिनी और गधे का मिलन हुआ है। तू अपने घर लौट जा। मेरे लिए जीवन बर्बाद मत कर। उसने जवाब दिया - आप ऐसा क्यों बोल रहे हैं? क्या कुलीन स्त्री की चेष्टा को आप नहीं जानते? वैभवरहित, रोगयुक्त, शक्तिहीन, भाग्यवर्जित ऐसे भी अपने पति की देवता के समान मानकर कुलवान स्त्रियाँ सेवा करती हैं। सती एवं यति का शील ही विभूषण है। सती स्त्री जीवन केवल एक बार समर्पित करती है। उसके मुख से शेष पुरुष की रूप प्रशंसा भी असंभव है। इस प्रकार उसका दृढ़मनोबल जानकर राजहंस बहुत खुश हुआ कि वास्तव में यह कुलीन स्त्री है। आजीवन पर पुरुष पर नजर उठाकर न देखा और न देखेगी। प्राण संकट में आने पर भी अन्य पुरुष का स्वीकार नहीं करेगी। इस प्रकार विचारता हुआ राजहंस निद्राधीन हो गया। सुबह दोनों आगे चले। मध्याह्न के समय वृक्ष के नीचे विश्राम के लिए बैठ गये। थकान के कारण राजहंस सो गया। कलावती उसके रोग के उपशमन के कारणों के बारे में सोचने लगी। भक्तामर स्तव के एकतालीसवें श्लोक में एकाग्र हुई। इतने में उसने देखा कि पति के उदर से मुख द्वारा सर्प का मुख निकला। समीप के वल्मीक वृक्ष के अग्र भाग पर दूसरे सर्प का मुख निकला। दोनों सर्प चक्रेश्वरी के द्वारा अधिष्ठित थे। परस्पर विवाद करते हुए अपने-अपने मर्म को कहने लगे। वल्मीक वृक्ष वाले सर्प ने कहा - रे दुराचारी! सत्पुरुष रूप विनाशक! यदि कोई इस राजहंस को अति खट्टी छाश पिलाये तो तुझे इसके शरीर से भागना पड़ेगा। उदर सर्प ने जवाब दिया - रे दुष्ट सञ्चयकर! कृपण! यदि कोई तुम्हारे बिल में गरम-गरम तेल डाल दे तो तुझे अपने द्वारा अधिष्ठित धन को छोड़कर भागना पड़ेगा। इस प्रकार कहकर दोनों सर्प अपने-अपने स्थान पर चले गये। कलावती ने उन दोनों सर्पो का वार्तालाप अपने कानों से सुना। इतने में चक्रेश्वरी देवी प्रकट हुई। उसने कलावती से कहा कि मैंने ही यह सब तुम्हारे जाप के प्रभाव से किया है। इस प्रकार कहकर देवी तिरोभूत हुई। कलावती ने समीप के गोकुल से खट्टी छाश लाकर पति को पिलायी। तुरन्त उसकी व्याधि का उपशमन हो गया। सुवर्ण एवं

कामदेव के समान अपने स्वाभाविक रूप को प्राप्त किया। पति को सारी बात कहकर वल्मीक वृक्ष में गरम-गरम तेल डालने से निधान प्रकट हुआ। राजहंस ने भी अपने कुल और गोत्र का प्रकटीकरण किया। वापस अपने नगर में लौटे। पत्नी एवं धन सहित राजहंस को देखकर राजशेखर राजा अत्यन्त खुश हुआ। कमला रानी के द्वारा यह सब किया गया है यह जानकर उसे देशनिष्कासन की सजा दी गयी। क्रम से राजकुमार राजा बना। मानगिरि को भी इस बात के समाचार मिले। सत्य हकीकत जानकर उसने भी स्वीकार किया कि सब कर्माधीन है। राजहंस एवं कलावती की कीर्ति दूर दूर तक फैली। कई लोगों ने जैन धर्म स्वीकारा। चिरकाल तक दम्पती ने सुखों का उपभोगकर अन्त में अपने पुत्र को राज्य देकर, वे दोनों देवलोक में गये।

सद्गुरु को दीपक की उपमा से उपमित कर यह सिद्ध किया है कि वे भव्यात्माओं के मिथ्यात्व अंधकार को दूर कर सम्यक्त्व का प्रकाश आत्मा के एक-एक प्रदेश पर प्रसारित कर देते हैं।

भव्यात्माओं में मिथ्यात्व की अभिवृद्धि हो वैसे अनुष्ठान, वैसा उपदेश देनेवाले तो महामिथ्यात्वी कुगुरु हैं।

इस कलिकाल में सर्वाधिक आवश्यकता है सद्गुरु एवं कुगुरु के पहचान की।

-जयानंद

द्विचत्वारिंशत्तम श्लोक : आपादकण्ठ...

भावार्थ : पैरों से आरम्भकर कण्ठ तक बडी जंजीरों से जकड़े हुए शरीरवाले (तथा) अत्यन्त बड़ी बेड़ियों के अग्रभाग द्वारा घिसी जाती जंघावाले मनुष्य निरन्तर आपके नामरूपी मन्त्र का स्मरण करते हुए तत्काल अपने आप ही बन्धन के भय से रहित हो जाते हैं। (बन्धन तुट जाते हैं)।

द्विचत्वारिंशत्तम श्लोक ऊपर प्राभाविक कथा :

अजमेर के विशाल गढ़ महाशूरवीरों को भी सिरदर्द बने हुए थे। राजपूत राजाओं की शूरवीरता उसमें मिली हुई थी। इस प्रकार अजेय अजमेर गढ़ भारत में अपना प्रताप बिखेर रहा था। मुसलमानों को जहाँ-जहाँ कंचन और कामिनी नजर आयी, उनके सीने में खुजली-सी उत्पन्न हो गयी। एक के बाद एक राज्य पर आक्रमणकर अपना आधिपत्य स्थापित कर रहे थे। दिल्ली के राज्य पर अपना कब्जा जमा लिया था। बादशाह जलालुद्दीन आगरा में अपना वर्चस्व स्थापितकर शासन चला रहा था। उनके मुख्य राजगण आजूबाजू के अनेक प्रांतों में जलालुद्दीन की आज्ञा से राज्य का संचालनकर रहे थे। किन्तु किसी भी प्रकार से अजमेर गढ़ को भेदने में वे सफल नहीं हुए। उसका मुख्य कारण था राजपुत्र रणपाल। रणपाल ने मुसलमानों के प्रत्येक आक्रमण का मुंह तोड़ जवाब दिया था। जलालुद्दीन की विशाल सेना को भी मुंह की खानी पड़ी थी। रणपाल जब रणाङ्गण में उतरता तो उसके पराक्रम को देखकर दुश्मन उल्टे पैर भाग जाते। रणपाल दुश्मन की सेना के बीच में घूसकर अकेला ही अपने पौरुष से उनके छक्के छुड़ा देता। जलालुद्दीन रणपाल को किसी भी कीमत पर पकड़ना चाहता था। किन्तु रणपाल के अजोड़ विक्रम के आगे यवनों का पूरा समूह फीका पड़ जाता था। न जाने उसे जीतने के लिए कितने उपाय किये किन्तु सब व्यर्थ गये। जलालुद्दीन ने अपने आदमियों को अजमेर के चारों ओर छोड़ रखे थे कि मौका देखकर रणपाल को मौत के घाट उतार दे। राजनीति छल के आदर से ही सफल होती है। न्याय-नीति का आलम्बन लेने जाय तो स्वयं को भी जान से हाथ धोने पड़ते हैं। इस प्रकार विचारकर अपने खास दायें हाथ समान क्रूर ऐसे मीर नामक व्यक्ति को आदेश दिया कि हम रणपाल को युद्ध में तो नहीं जीत सकते किन्तु छल से उसे मारा जा सकता है। इसलिए तुम रणपाल के महल की निगरानी रखना। मौका देखकर उसे अपने सिकंजे में फसा लेना। तुम्हारे साथ वेष परिवर्तनकर इन बलवान सुभटों को भी साथ भेज रहा हूँ। समय पर ये भी तुम्हारी सहायता करते रहेंगे। अब मीर अजमेर में

रहकर रणपाल के छिद्रों को ढुंढने लगा। इधर रणपाल का सङ्ग एक जैन मुनि से हुआ। जैनधर्म का वास्तविक स्वरूप जानकर उसका स्वीकार किया। नमस्कार महामंत्र एवं भक्तामर स्तव सिखकर त्रिकाल उनका स्मरण करने लगा। जीवन में दया एवं दान भाव का सम्यक् प्रकार से प्रादुर्भाव हुआ। उसके भाव कञ्चन वर्ण समान उज्ज्वल एवं निर्मल हुए। रणपाल जिनेश्वर के दर्शन, पूजन, वन्दन आदि में रहता था। दुश्मनों के द्वारा किसी भी प्रकार की कोई हलचल न देखकर अजमेरवासी सब निश्चिंत थे। एकबार रणपाल अपने पुत्र सहित महल में बेफिक्र होकर आराम कर रहे थे। दुष्ट मीर ने मौका देखकर अपने सुभटों द्वारा पुत्र सहित रणपाल को बन्दी बना लिया। रास्ते में अत्यन्त प्रताडन के द्वारा उस पर जुल्मकर दिल्ली लाकर जलालुद्दीन को सौंप दिया। जलालुद्दीन ने कहा रणपाल! तू मेरी आज्ञा स्वीकार ले तो मैं तुझे सही सलामत वापस तुम्हारे नगर भेज दूंगा। किन्तु वह दृढ़धर्मी अपने मन से जरा भी चलित नहीं हुआ। जलालुद्दीन ने प्रेम एवं भय दोनों उपायों से उसे समझाने की महेनत की किन्तु सब बेकार। क्रोधावेश में आदेश दिया - इन दोनों को मजबूत लोहे की जंजीरों से बान्धकर अन्धेरी काल-कोठरी में डाल दो। सिपाहियों ने उन दोनों को बान्धकर काल-कोठरी में डाल दिया। अब रणपाल भक्तामर स्तव का स्मरण करने लगा। मध्यरात्री के समय जब भक्तामर के बयालीसवें श्लोक का स्मरण कर रहा था तभी दिव्य उद्योत हुआ। एक षोडशी वहाँ प्रकट हुई। रणपाल ने पूछा आप देवी हैं या विद्याधरी। स्त्री ने कहा मैं चक्रेश्वरी की सेविका देवी हूँ। भक्तामर स्तव के स्मरण से चक्रेश्वरी ने मुझे तुम दोनों की सहायता के लिए भेजा है। चलो अब तुम दोनों उठो। रणपाल ने कहा - हम कैसे उठे? हमारा शरीर तो जंजीरों से जकड़ा हुआ है। देवी ने कहा जरा अपने हाथों से अपने हाथ-पैर स्पर्श कर देखो। रणपाल ने हाथ से स्पर्शकर देखा कि दोनों बन्धन रहित हो गये हैं। कालकोठरी के दरवाजे स्वयं खुल गये। इतने में सैनिक वहाँ दौड़ते आये। किन्तु उनको वे दोनों देवी की शक्ति से जंजीरों से जकड़े दिखायी दिये। वैसे ही बन्धे हुए देखकर सब सिपाही वापस लौट गये। उनके जाने के बाद देवी के द्वारा दर्शित सीड़ियों के मार्ग से किल्ले के ऊपर से नीचे कूदकर अपने नगर की ओर भागने लगे। इतने में राजा के सिपाहियों को इसकी खबर पड़ गयी। उन्होंने पीछा करना शुरू किया। वे दोनों पीछे आती सेना को देख सकते थे किन्तु सैनिक को वे दोनों दिखायी नहीं दे रहे थे। सेना अजमेर के दुर्ग तक आकर खाली हाथ वापस लौट गयी। रणपाल अपने पुत्रसहित कुशल-क्षेम नगर में पहुँच गया। उनको देखकर

नागरिक एवं कौटुम्बिक अत्यन्त खुश हुए। चिरकाल तक राज्य पालनकर, आजीवन अजेय रहकर, जैनधर्म की उत्कट प्रभावना की।

त्रिचत्वारिंशत्तम श्लोक : मत्तद्विपेन्द्र...

भावार्थ : जो बुद्धिशाली आपके इस स्तवन को पढ़ता है उसके मदोन्मत्त हाथी, सिंह, दावानल, सूर्य, युद्ध, समुद्र, जलोदर (और) बन्धन से उत्पन्न हुए भय मानो स्वयं ही भयभीत हुए हो वैसे शीघ्र नाश को प्राप्त करते हैं।

चतुश्चत्वारिंशत्तम श्लोक : स्तोत्रस्त्रजं...

भावार्थ : हे जिनेश्वर! भक्ति से मेरे द्वारा (श्री मानतुंग सूरि) पूर्व कथित ज्ञानादि गुणों से गुम्फित (तथा) मनोहर अकारादिक अक्षर रूपी विचित्र पुष्पोंवाली (यह) आपकी स्तोत्ररूपी माला को इस जगत में जो मनुष्य निरन्तर कण्ठ में धारण करता है, उस चित्त की उन्नतिवाले पुरुष को (अथवा) मानतुंग सूरि को अपने आप लक्ष्मी प्राप्त होती है।

॥ इति संपूर्ण भक्तामर कथा कामकुम्भ ॥

प्रतिमा की सिद्धि का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है "समवसरण" प्रभु स्वयं पूर्वाभिमुख बिराजमान होते हैं। तीन पर्षदा भगवंत के मुख से देशना सुनती हैं। शेष नौ पर्षदा तो भगवंत के प्रतिबिंब से ही उपदेश पाती हैं। फिर भी प्रतिमा को न मानना यह कैसा कदाग्रह!

प्रबुद्ध वर्ग सोचे।

-जयानंद

श्री भक्तामर स्तोत्र

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा,-मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-वालम्बनं भव-जले पततां जनानाम् ॥१॥
यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्वबोधा,-दुद्भुत-बुद्धि-पटुभिः सुरलोक-नाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय-चित्त-हरैरुदारैः,स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥
बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ!, स्तोतुं समुद्यत-मतिर्विगतत्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल-संस्थितमिन्दुबिम्ब,-मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्? ॥३॥
वक्तुं गुणान् गुण-समुद्र! शशाङ्क-कान्तान्, कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्ध्या?
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं, को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्? ॥४॥
सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश!, कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्तः।
प्रीत्याऽऽत्मवीर्य-मविचार्य मृगो मृगेन्द्रं, नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥
अल्प-श्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम, त्वद्-भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति, तच्चारु-चाम्र-कलिका-निकरैकहेतुः ॥६॥
त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति-सन्निबद्धं, पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रान्त-लोक-मलि-नीलमशेषमाशु, सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वर-मन्धकारम् ॥७॥
मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद-मारभ्यते तनु-धियाऽपि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु, मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूद-बिन्दुः ॥८॥
आस्तां तव स्तवनमस्त-समस्त-दोषं, त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्र-किरणः कुरुते प्रभैव, पद्माऽऽकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥९॥
नात्यद्भुतं भुवन-भूषण! भूतनाथ!, भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा? भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥
दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष-विलोकनीयं, नान्यत्र तोष-मुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशि-कर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः, क्षारं जलं जल-निधेरशितुं क इच्छेत्? ॥११॥
यैः शान्तराग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वम्, निर्मापितस्त्रिभुवनैक-ललाम-भूत!
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां, यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२॥
वक्त्रं क्व ते सुरनरोरग-नेत्र-हारी, निःशेष-निर्जित जगत्त्रितयोपमानम्?
बिम्बं कलङ्क-मलिनं क्व निशाकरस्य?, यद्वासरे भवति पाण्डु-पलाश-कल्पम् ॥१३॥
सम्पूर्ण-मण्डल-शशाङ्क-कला-कलाप-शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर! नाथमेकं, कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥
चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिता-चलेन, किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्? ॥१५॥

निर्धूम-वर्त्तिरपवर्जित-तैल-पूरः, कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटी-करोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानाम्, दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः ॥१६॥

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहु-गम्यः, स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदर-निरुद्ध-महाप्रभावः, सूर्यातिशायिमहिमाऽसि मुनीन्द्र! लोके ॥१७॥

नित्योदयं दलित-मोह-महान्धकारं गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति, विद्योतयज्जगदपूर्व-शशाङ्कबिम्बम् ॥१८॥

किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा, युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमस्सु नाथ!
निष्पन्न-शालिवन-शालिनि जीव-लोके, कार्यं कियज्जल-धरैर्जलभार-नम्रैः ॥१९॥

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशम् नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वम्, नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः, कश्चिन्मनो हरति नाथ! भवान्तरेऽपि ॥२१॥

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्, नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं, प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशु-जालम् ॥२२॥

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-मादित्य-वर्ण-ममलं तमसः परस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः ॥२३॥

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम्
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं, ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात् त्वं शङ्करोऽसि भुवन-त्रय-शङ्करत्वात्
धाताऽसि धीर! शिव-मार्ग-विधे र्विधानात्, व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

तुभ्यं नमस्त्रि-भुवनार्ति-हराय नाथ, तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय, तुभ्यं नमो जिन! भवोदधिशोषणाय ॥२६॥

को विस्मयोऽत्र? यदि नाम-गुणैरशेषैस्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश!
दोषैरुपात्तविविधाश्रय-जात-गर्वैः, स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

उच्चैरशोक-तरु-संश्रितमुन्मयूख-माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त-तमो-वितानं, बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्व-वर्ति ॥२८॥

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे, विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्विलसदंशु-लता-वितानं तुङ्गोदयाद्रि-शिरसीव सहस्ररश्मेः ॥२९॥

कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं, विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम्।
उद्यच्छशाङ्क शुचिनिर्झर-वारिधार-मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

छत्र-त्रयं तव विभाति शशाङ्क-कान्त-मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानु-कर-प्रतापम्।
मुक्ता-फल-प्रकर-जाल विवृद्ध-शोभं, प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

उन्निद्र-हेम-नव-पङ्कज-पुञ्ज-कान्ति-पर्युल्लसन्नख-मयूख-शिखाऽभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र! धत्तः, पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३२॥

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र! धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य।
यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि? ॥३३॥

श्च्योतन्मदाविलविलोल-कपोल-मूल, मत्त-भ्रमद्-भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपम्।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं, दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३४॥

भिन्नेभ-कुम्भ-गल-दुज्ज्वल-शोणिताक्त-मुक्ता-फल-प्रकर-भूषित-भूमि-भागः।
बद्ध-क्रमः क्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि, नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते ॥३५॥

कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्निकल्पं, दावानलं ज्वलित-मुज्ज्वल-मुत्फुलिंगम्।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुख-मापतन्तं, त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम् ॥३६॥

रक्तेक्षणं स-मद-कोकिल-कंठनीलं, क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फण-मापतन्तम्।
आक्रामति क्रम-युगेन निरस्तशंक-स्त्वन्नाम-नाग-दमनि हृदि यस्य पुंसः ॥३७॥

वल्गत्तुरंग-गज-गर्जित-भीम-नाद-माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्।
उद्यद्-दिवाकर-मयूख-शिखापविद्धं, त्वत्कीर्तनात् तम इवाशु भिदामुपैति ॥३८॥

कुन्ताग्रभिन्न-गज-शोणित-वारि-वाह, वेगावतार-तरणातुर-योध-भीमे।
युद्धे जयं विजित-दुर्जय-जेय-पक्षा, स्त्वत्पाद-पङ्कज-वनाश्रयिणो लभन्ते ॥३९॥

अम्भो-निधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र-पाठीन-पीठ-भयदोल्बण-वाडवाग्नौ।
रङ्गतरङ्ग-शिखर-स्थित-यान-पात्रा, स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४०॥

उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः।
त्वत्पाद-पङ्कज-रजोऽमृत-दिग्धदेहाः, मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥४१॥

आपाद-कण्ठमुरु-शृङ्खल-वेष्टिताङ्गा गाढं बृहन्निगड-कोटि-निघृष्टजङ्घाः।
त्वन्नाम-मन्त्र-मनिशं मनुजाः स्मरन्तः, सद्यः स्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति ॥४२॥

मत्त-द्विपेन्द्र-मृग-राज-दवानलाहि-सङ्ग्राम-वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थम्।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव, यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४३॥

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र! गुणैर्निबद्धां, भक्त्या मया रुचिरवर्ण-विचित्रपुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठ-गतामजस्रं, तं मानतुङ्ग-मवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४४॥

- गति करता है अविवेकी, प्रगति करता है विवेकी।
- विवेक ऐसी चक्षु है, जो जन्मान्ध को प्रज्ञाचक्षु बना देता है।
- विवेक रहित धर्मक्रिया, बिना नमक का भोजन।
- विवेक की सीढ़ी पर पैर रखने वाला ही, मुक्ति की मंजिल पा सकता हैं।
- विवेक बाजार में नहीं मिलता वह तो आंतरिक स्फुरायमान देदिप्यमान ज्योति है।
- तराजू के एक पलड़े में विवेक पूर्वक का एक अनुष्ठान, दूसरे पलड़े में अविवेक पूर्वक के अनेक अनुष्ठान, विवेक वाला भारी रहेगा।
- जीवन समर्पित किये बिना आत्मिक एवं भौतिक उन्नत्ति असंभव।
- जाने की दिशा में चलनेवाला ही पहुँचेगा।
- दिशा निश्चित कर चलने वाला पहुँचता है, अन्य भटकता है।
- विषवृक्ष की छाया से माया की छाया भयंकर है।
- काष्ठ की आग से स्वयं बच सकता है परंतु ईष्या की आग से स्वयं जलेगा ही।
- क्रोध दूसरे का अहित करे या न भी करे परंतु स्वयं का तो अहित करता ही है।
- माचीस स्वयं जलती है दूसरो को जलाये या न भी जलाये वैसा क्रोधी है।
- मोमबत्ती जलकर प्रकाश देती है क्रोधी जलकर अंधकार फैलाता है।
- लकड़ियाँ जल कर उपकार भी करती है परंतु क्रोधी जलकर अपकार ही करता है।
- माचीस स्वयं नहीं जलती परंतु क्रोधी तो स्वयं अपने आप जलता है।
- माचीस एक बोक्स में पचास रह सकती है, क्रोधी एक घर में दो भी नहीं रह सकते।
- माचीस जलाने वाला नहीं जलता, परंतु क्रोध उत्पन्न करवाने वाला जलता ही है।
- जलने जलाने के स्वभाव वाली माचीसें संप से रह सकती है क्रोधी नहीं।
- माचीस कहती है मैं जलाती भी हूँ प्रकाश भी देती हूँ क्रोधी ऐसा नहीं कह सकता।
- एक माचीस हजारो टन रूई जला सकती है वैसे एक क्रोधी हजारों को जला सकता है।
- सद्गुरु की परतंत्रता में स्वतंत्रता है।
- ममकार में अहंकार है, अतः संसार है।
- माचीस पर जल की एक बूंद गिरजाय वह नहीं जलेगी, क्रोधी जल पीता है फिर भी आग फैलाता है।
- कमरे में हजारों वर्षो से रहा हुआ अंधकार एक क्षण में एक माचीस भगा देती है, क्रोधी हजारों लाखों वर्षो के तप के प्रकाश को एक क्षण में अंधकार में परिवर्तित कर देता है।

'जयानन्द'

- लक्ष्य निश्चित करने वाला उन्नति करता है लक्ष्यहीन अवनति।
- काष्ठ की आग एक बार जलाती है, ईर्ष्या की आग हर पल।
- पथज्ञ भी कदम बढ़ाये बिना अपनी मंजिल तक नहीं पहुँच सकता।
- संसार की शिष्टबद्धता विवेक पर रही हुई है।
- विवेक से विषम भी परिस्थिति सम में परिवर्तित हो जाती है।
- अविवेकी आयोग्य आचरण कर भी हंसता है। खुश होता है।
- माचीस बोक्स में टकराकर भी नहीं जलती क्रोधी किसी से भी टकरायेगा तो जलेगा ही।
- तन से हिंसा प्रथम नरक तक मन से हिंसा सप्तम नरक तक।
  जैन शासन पर रुचि-संसार पर अरुचि
- संसार पर रुचि, शासन पर अरुचि।
- रुचि पूर्वक संसार में रहने वाला धर्म नहीं कर सकता।
- गुरु और शिष्य मोही न भूतो न भविष्यति।
- गुरु तो शिष्य के आत्मोद्धारक।
- मेरा मेरा करनेवाला कभी सुखी नहीं हो सकता।
- मेरा भी तेरा कहने वाला सुखी हुए बिना नहीं रहेगा।
- विवेकी आत्मा गुणवानों के चरणों में लोटेगा अगुणी के सामने खड़ा रहेगा।
- पाप का कार्य भव भय के डंख पूर्वक करे वह समकिति।
- आत्मा के हिताहित का विचारक समकिति।
- विगई में विगति में ले जाने की शाक्ति है। वह शक्ति है आसक्ति की।
- क्षीरान्न भोजन करते-करते केवल ज्ञानी हो गये हैं।
- आचार हीन - सद्गति हीन।
- आचार प्रेमी - सद्गति गामी।
- प्रत्येक आत्मा के सुख का चाहक अपने दुःखों का नाशक है।
- बाहरी विजय दुःखकर भी हो सकती है परंतु आत्म विजय सुखकर ही।
- संपत्तिवान् सुखी भी दुःखी भी, गुणवान सुखी ही।
- सुख दुःख बाहर का नहीं, अंदर का उपयोगी।
- मैंने कहा वह नहीं, महावीर ने कहा वह सत्य।
- नग्न सत्यवचन भी अहितकर हो तो असत्य वचन।

'जयानन्द'

- ज्ञान में अटक गया, संसार में भटक गया।
- क्रिया में ही निमग्न - भव सभुद्र में निमग्न।
- ज्ञान - क्रिया साथ में मोक्ष है हाथ में।
- समकित का नारा मोक्ष होगा हमारा।
- ज्ञान उसी का सच्चा, जो है पाप में कच्चा।
- चारित्र उसी के पास, समता में चलता श्वास।
- साधु खाता नहीं है, उसे खाना पड़ता है।
- साधु क्रोध करता नहीं, आ जाता है, तब विफल करने वाला साधु।
- क्षमा साधू का स्वभाव, कषाय विभाव।
- साधु का मौन - गुप्ति, साधु बोला - समिति।
- गुरु से माया, मिले नरक की छाया।
- शुद्ध संयोग का वियोग नहीं, अशुद्ध संयोग वियोगवान्।
- अशुद्ध संयोग के वियोग में रोना, पुण्य को खोना, पाप को लाना।
- कहे कुछ, करे कुछ - संसारी।
- जो कहे, वही करे - साधु।
- लोग कहते हैं भगवान देते नहीं, मैं कहता हूँ सब कुछ भगवान ही देते है।
- वीतराग को ही देने वाला मानता है वही श्रद्धावान्।
- भगवान को देने वाला नहीं, भगवान से लेने वाला महान्।
- जिसके पास जो होता है वही वे दे सकते है।
- श्रावक का कार्य साधु करे वह पाप।
- जो सुवास छोड़कर जाते हैं उसे लोग याद करते हैं।
- किसी के घर में प्रवेश करना सहज है , हृदय में प्रवेश करना कठिन।
- पाप का भय नहीं जिसके जीवन में उसका गमन दुर्गति में।
- पिता का कहा स्वेच्छा पूर्वक करना धर्म, अनिच्छा से करना अधर्म।
- नौकरी में पैसा मिलता है, भक्ति में पुन्य।
- जो कार्य भक्ति से करना है वह कार्य पैसो से होता है तब पुन्य के स्थान पर पाप की संभावना अधिक है।
- संसार में अनादि से त्याग की पूजा हो रही है भोग की नहीं।

'जयानन्द'

- साधुवेष में दूराचार सेवी भी जन्मदिन मनाये उसके जैसा पाप कौनसा ?
- प्रायश्चित्त मनोनुकूल ले वह भी पाप।
- साधक की असावधानी में पुण्य का उदय अशुभ का कारण बनता है।
- दवा (औषधियों) से जो कार्य न हो वह हवा से हो सकता है।
- प्रभु का प्रेम जीव प्रेमी पा सकता है।
- स्व वचाव व्यक्ति की अपात्रता है।
- इन्द्रिय दमन के बिना वासना का वमन नहीं हो सकता।
- वासना का वमन अशुभ प्रवृत्तियों का शमन करती है।
- मानव ही पावन बन सकता है देव नहीं।
- बाह्य कादव को हर एक दूर कर सकता है परन्तु कर्म कादव को दूर करनेवाले विरले ही है।
- पुण्योदय से बाह्य सामग्री मिलती है तो पापोदय से नष्ट भी हो जाती है।
- भौतिक उन्नति में पुण्योदय मुख्य कारण है परन्तु आत्मोन्नत्ति में आत्मा ही मुख्य कारण है पुण्योदय गौण कारण है।
- जो आत्मा परलोक के हित के लिए व्याख्यान सुनता है वह श्रोता है।
- अध्ययन जनरंजन के लिए भी हो सकता है परंतु चिंतन मनन स्व के लिए होता है।
- आहार की शुद्धि (साधक को) मानव को संस्कारी बनाती है।
- आत्मा का आहार और शरीर का आहार भिन्न-भिन्न है।
- आत्मा को आहार देने के समय पर शरीर को आहार देना मूर्खता है।
- विरागी पर राग और रागी पर विराग यह धर्म का मर्म है।
- धर्म को धक्का देने का कार्य संसार का राग करवाता है।
- संसार में सार पदार्थ है परन्तु अधिकांश आत्माओं ने असार पदार्थ धन को सार पदार्थ मान लिया है।
- धन की शुद्धि धर्म शुद्धि में सहायक है।
- धन उसीको मिलता है जिसने धर्म किया है।
- पुण्य सर्वथा हेय नहीं है किसी अवस्था तक उपोदय ही है।
- पुण्य की उपादेयता ही आत्मा को पुण्य की हेय अवस्था तक ले जाती है।
- पुण्योदय के बिना आत्मा को धर्म की प्राप्ति असंभव है ।
- आलय की शोभा जिनालय से है। चाहे वह दो बाय दो का ही हो।

'जयानन्द'

- जिनालय बिना के आलय में जैन रह नहीं सकता, कदाच रहना पड़ता हो तो दुःख पूर्वक रहता है।
- जैन धन प्रेमी नहीं धर्म प्रेमी होता है।
- जो दे न्यायद्रव्य का दान, ज्ञानयों की नजर में उसका बढ़ता मान
  जैन दो-दो नहीं कहता परंतु लो-लो तो कहता ही है।
- आज श्वेतांबर मूर्तिपूजक संघ मूर्ति पूजा, प्रभु पूजा को गौणकर व्यक्ति पूजा की ओर आगे कूच कर रहा है।
- जिनमंदिर का स्थान सुरमंदिर ले रहा है।
- कहीं-कहीं जिनमूर्ति का स्थान सुरमूर्ति ने ले लिया है।
- क्रिया में आशय का शुभाशुभ फल मिलता है।
- वेष बदलना सहज, सरल, मन बदलना कठिन।
- मन बदला भव बदला।
- मन से मान मिटाने वाला महान् बनता ही है।
- मन में मान का मजा लेने वाला सजा भुगतता है।
- उत्थान पतन तन पर नहीं मन पर आधारित है।
- तन मंदिर में मन घर में अशुभ कर्म आत्मा पर।
- तन निगोद में भी है द्रव्य मन तो संज्ञी पंचेन्द्रिय पने में ही।
- तन से मैत्री अधिक काल की है मन की मैत्री कम समय की।
- तन को तपाना कम फल मन को मारना विशेष फल।
- तन की सुन्दरता अशुभ कर्म बंधवा सकती है, मन की सुंदरता कर्म मुक्त करवाती ही है।
- अज्ञ लोगों की नजर तन पर ज्ञानी की नजर मन पर।
- आत्म अहित तन से नहीं हुआ उतना मन से हुआ।
- जिसे संसार में रहता पड़ा है वह सुखी होगा।
- जो संसार में रहा है वह दुःखी होगा।
- जिसे संसार पर अरुचि हो उसी को आगम पढ़ने का अधिकार।
- भौतिक पदार्थ प्राप्त करने की इच्छा उसीका नाम आर्त्तध्यान।
- भौतिक पदार्थों की सुरक्षा करने का उग्र विचार उसका नाम रौद्रध्यान।
- देव भव -भोग प्रधान, मानवभव-त्याग प्रधान।

'जयानन्द'

- भौतिक विजय नाशवान है, आत्मिक विजय शाश्वत है।
- किसी भी कार्य का मूल्यांकन उसके फल से करो।
- बाल्यावस्था संस्कार के लिए।
- युवावस्था धर्माराधना के लिए।
- वृद्धावस्था उत्तम सलाह देने के लिए।
- करो वही जो अरिहंत को प्रिय हो।
- आगम का कार्य आत्म दर्शन करवाना।
- शास्त्रों का कार्य शस्त्र से दूर रखना।
- ग्रन्थों का कार्य ग्रन्थी से मुक्त करवाना।
- कथाओं का कार्य जीवन को संस्कारी बनाना।
- अशुभ विचार कचरा है, उसमें आनंदित होनेवाला रासभ है।
- शुभ विचार स्वच्छ जल है, उसमें आनंदित होने वाला हंस है।
- वाणी में गंदापन, अशुभ विचारों का परिणाम।
- वरराजा वही जो मुक्ति स्त्री से विवाह के लिए जा रहा हो।
- वरराजा का पिता वही जो मुक्ति रूपी पुत्रवधु का मुख देखना चाहे।
- माता वही जो अपने पुत्र की शादि मुक्ति कन्या से करनी चाहे।
- स्व को भूले, पर में झूले वह दुर्गति में रुले।
- स्व में रमे, पर से घूमे, वही आत्म मस्ति में झूमे।
- श्रेष्ठ वही जो श्रेष्ठ आचारवान् है।
- उदार, लक्ष्मी का स्वामी।
- कृपण, लक्ष्मी का दास।
- पाप कार्य में प्रवीण, नरक गमन।
- जहाँ कहीं भी, आ गये. अब जाना कहाँ है सोचो। यह स्वाधीन है।
- घर, मकान, महल में खूब रहे अब शिवपुर में रहने की इच्छा करें।
- इच्छा अनिच्छा से खूब खाया, अब छोड़ो खाने की माया।
- नींव वाले स्थान में बहुत रहे, अब बिना नींव के महल में चले जाएँ।
- धनवान् - योग्य मार्ग पर खर्च करने वाला।
- निर्धन - अयोग्य कार्य में खर्च करने वाला।

'जयानन्द'

हे प्रभु ! तेरी भक्ति तेरे जैसा बनादे ।

रावण अष्टापद तीर्थ पर दर्शन पूजन करने आया था । उस समय नृत्य भक्ति के समय मंदोदरी प्रभु के सामने नाच रही थी एवं रावण विणा बजा रहा था दोनों भक्ति में लयलीन थे । इतने में वीणा का एक तार टूट गया, तब नृत्य में भंग न हो इसलिए लघु लाघवी कला से एक नस निकालकर उस वीणा में जोइंट कर दीया । नृत्य भंग न होने दिया । उस समय प्रभु भक्ति की परा काष्ठा के फल रूप में तीर्थंकर नाम कर्म के दलिक प्राप्त हुए । निकाचित तो आगे के भवों में करेगा ।

कर्म न छूटे रे प्राणियाँ

रावण धर्मात्मा था । श्री शांतिनाथ भगवंत का गृह मंदिर उसके राजमहल में था । जिसकी प्रशंसा रामचंद्रजी ने स्वमुख से की थी । रावण प्रभु का परम भक्त था । उसने पूर्व कृत कर्म के उदय से ही सीता का अपहरण किया था । वासुदेव एवं प्रति वासुदेव युद्धादि के पाप से एवं राज्य पर अति आसक्ति के कारण नियमा नरक में जाते हैं । इस से वह नरक में गया है । निमित्त कारण सीता का अपहरण बना है ।

हे प्रभु । ऐसी सद्बुद्धि देना ।

श्री भरत चकवर्ती एवं बाहुबली इन दोनों भाइयों का बारह वर्ष तक युद्ध हुआ था । इन्द्र की विनति स्वीकारकर यद्ध बंधकर दोनों भाईयों ने, द्रष्टियुद्ध, बाहुयुद्ध, दंडयुद्ध, वागयुद्ध एवं मुष्टियुद्ध स्वीकार किया था । पाँचो युद्धों में भरत चक्रवर्ती हार गये थे । तब भरतजी ने चक्र चलाया था । चक्र गोत्रिय पर काम नहीं करता । तब बाहुबलीजी को अतीव क्रोध आ गया और उन्होंने भरत को मारने हेतु मुट्ठी उठायी । दौड़ते ही विवेक जागृत हो गया । संसार का स्वरूप समझ में आ गया और उसी मुट्ठि से लोचकर साधु बन गये ।

हे प्रभु । मान छोडु तब ज्ञान होगा ।

स्वयं दीक्षित बनने के बाद उन्हें विचार आया कि मैं मेरे छोटे भाइयों के पास छद्मस्थ पने में कैसे जाऊँ ? मैं भी केवलज्ञान प्राप्तकर ही जाऊँगा । मैं उन्हें वंदना कैसे करु ? इस भाव से एक वर्ष तक निश्चल खड़े खड़े तप करते रहे । केवलज्ञान न हुआ ।

ऋषभदेवजी ने ब्राह्मी, सुंदरी दोनों साध्वीयों को प्रतिबोध देने हेतु भेजी । उन्होंने वहाँ आकर बाहुबलीजी से कहा "वीरा मोरा ! गजचढ्यां केवल न होय !" बाहुबलीजी ने ये शब्द श्रवणकर चिंतन किया और उस चिंतन में मान रूपी गज पर चढा हुआ अपने आपको देखा । उसी समय मान रूपी गज से उतरकर मुनि भगवंतों को वंदन करने के परिणाम लाये । पैर उठाया और उसी समय केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ।

इरियावही से केवलज्ञान

अइमुत्ता नाम का एक राजकुमार गौतम स्वामीजी के साथ भगवंत के पास आया और उसने संसार से विरक्त होकर चारित्र लिया। एक दिन स्थविर मुनियों के साथ स्थंडिल गये थे तब दूसरे बालकों की होड़ी तैराने की बालचेष्टा से आकर्षित होकर स्वयं ने अपनी पातरी जल में तैरा दी। यह देखकर स्थविर साधुओं ने उपालंभ दिया। अइमुत्ता मुनि को पश्चाताप हुआ। नौ वर्ष की उम्र में इरियावही प्रतिक्रमण करते-करते "पणग दग" शब्द पर आलोचना विचारणा करते-करते केवलज्ञान को पाये।

मुनि निन्दा का परिणाम

सीता की आत्मा ने पूर्व में वेगवती के भव में एक निर्दोष सद्गुरु मुनि भगवंत पर दोषारोपण किया था कि "इसको मैंने एक स्त्री के साथ देखा है।" इसका पश्चाताप उसी भव में किया था। फिर भी कुछ अंश निकाचित के रूप में रह गया था। जिसका फल सीता के भव में मिला।

अपने पास नहीं था फिर भी देते थे।

श्री गौतम स्वामी जी स्वलब्धि से अष्टापद पर्वत पर जिन चेत्यों को वंदन करने के लिए गये थे। वहाँ प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पावडी पर तप करने वाले पन्द्रह सौ तीन तापसों को प्रति बोधितकर, दीक्षा देकर अष्टापद तीर्थ की यात्रा करवाकर, एक पात्र में खीर वहोरकर लाकर उन्हें पारणा करवाया। उस समय पांचसो एक को केवलज्ञान हुआ। पाँचसो एक को समवसरण देखकर एवं पांचसो एक को महावीर स्वामी की वाणी सुनकर केवलज्ञान हुआ। इस प्रकार सभी तापस केवली बन गये।

"ब्रह्मचर्य का प्रभाव"

स्थूलभद्रजी का नाम चौराशी चोवीसी तक रहेगा। इसका कारण है "इन्होंने कोशा वेश्या के पास संसारी अवस्था में बारह वर्ष बिताये थे। उसी कोशा की चित्रशाला, जो कामोत्पादक चित्रों से चित्रित थी उस चित्रशाला में, कोशा के द्वारा प्रदत्त कामोद्दीपक आहारकर, कोशा के द्वारा उन्हें चलायामान करने हेतु नृत्यादि होने पर भी अंश मात्र विकार भाव न आया कोलसे की वखार में जाकर भी निर्दाग बाहर आ गये।" इस प्रकार की ब्रह्मचर्य की शक्ति के कारण उनका नाम चौराशी चौवीसी तक रहेगा।

हे प्रभु ! ऐसी अनासाक्ति तो देना।

श्री शालीभद्रजी जो गोभद्र सेठ एवं भद्रा माता के पुत्र थे। उनकी बत्तीस पत्नियाँ थी। वे सभी देवता के द्वारा प्रदत्त आभूषणादि का उपभोग करते थे। आज के पहने हुए गहने भी दूसरे दिन नहीं

पहनते थे। रोज नये-नये वस्त्राभूषण पहनते थे। उनके समान ऋद्धि भोगने वाले दूसरे नहीं हुए। वे इतनी ऋद्धि का उपभोग करते हुए भी किंचित निमित्त से विरक्त हो गये।

हे प्रभु ! ऐसे दान के भाव मुझे मिले।

शालीभद्रजी की आत्मा पूर्वभव में संगम नामक बालक था। उसने अपनी माता के पास खीर के लिए आग्रह किया। माँ के पास खीर के लिए सामग्री लाने की शक्ति नहीं थी। उसे रोना आ गया। उसका रोना अड़ोस-पड़ोस की बहनों ने सुना और उन्होंने खीर की सारी सामग्री लाकर दी। माँ ने खीर बनाकर संगम की थाली में परोसी। माँ कार्य हेतु बाहर गयी। संगम खीर ठंडी होने की राह देख रहा था। इतने में मार्ग से तपस्वी मुनि जा रहे थे। उसके भाव मुनि को खीर वहोराने के हुए। उसने मुनि भगवंत को पधारने हेतु विनति की। मुनि भगवंत को उसने पूर्ण भाव से उल्लास पूर्वक सभी खीर वहोरादी। मुनि भगवंत धर्मलाभ देकर चले गये।

संगम ने मुनिदान की मनोमन अनुमोदना की। माँ से भी नहीं कहा। वह थाली में चीपकी हुई खीर अंगुली से चाट रहा था, तब माँ ने अपने बेटे की क्षुधा का विचारकर तपेली में रही हुई दूसरी खीर भी परोस दी। उसने वह खीर खायी। उसी रात उसकी योगानुयोग मृत्यु हुई। शुभ भाव से मुनिदान की अत्यंत अनुमोदना के कारण विपुल पुण्य कर्म एवं भोगावली कर्म बांधकर गोभद्र शेठ के घर भद्रा माता की कुक्षी में उत्पन्न हुआ। उस समय गोभद्र शेठ राजगृही नगरी में सर्वोत्तम धनी थे। मुनिदान के प्रभाव से संगम की आत्मा शालीभद्र के रूप में जन्म लेकर देवताई सुख की भोक्ता बनी।

'राजा प्रजा के दर्शन करे'

अग्नि में उत्पन्न चूहों के बालों से निर्मित शर्दी मे गर्म, गर्मी में शीत एवं वर्षा से सुरक्षित रखने वाली और मैली होने पर आग में धुलाई होती है जिसकी उसका नाम रत्न कंबल।

ऐसी रत्न कंबल के कुछ व्यापारी नेपाल देश से राजगृही में अपनी रत्न कंबल बेचने हेतु आये थे। एक एक रत्न कंबल सवा लक्ष स्वर्ण मुद्राओं की किंमत वाली थी। ऐसी रत्नकंबल लेकर व्यापारी श्रेणिक राजा के पास गये पर राजा ने प्रजा के धन को स्वयं के मौज शोख के लिए खर्च करने के लिए नहीं है। ऐसा कहकर रत्न कंबल को न ली। व्यापारी निराश होकर जा रहे थे। भद्रा माता की दासियों के आग्रह से व्यापारी भद्रा माता के पास गये। भद्रा माता ने सोलह रत्न कंबल खरीद कर दो-दो टुकडे करवाकर अपनी बहुओं के पास भेज दिये। उन्होंने उससे पग पोंछकर कचरे में डाल दिये। यह बात श्रेणिक राजा के पास गयी। उन्होंने शालीभद्र को देखना चाहा। भद्रामाता के आग्रह से श्रेणिक उनके घर आये और शालिभद्र को सातवी मंजिल से नीचे चौथी मंजिल पर भद्रामाता ने लाया। श्रेणिक राजा ने उस को गोदी में बिठा कर सत्कारा। श्रेणिक राजा के स्पर्श से उसको पसीना आ गया। भद्रा के कहने पर उसे जाने की आज्ञा दी गयी। वह अपने सातवे खंड में गया। श्रेणिक राजा धन्यता का अनुभव कर राज महल में गया।

जिनका वेराग्य वंदनीन है।

शालिभद्र को तब मालुम हुआ कि मुझ पर कोई राजा है और उन्होंने संसार छोडकर चारित्र लेने के परिणाम व्यक्त किये। माता के आग्रह से रोज एक एक नारी का त्याग करने लगे। यह बात सुनकर उनकी बहन सुभद्रा की आँख में आँसु आ गये। धनाजी के पूछने पर सुभद्रा ने शालिभद्र के विराग की बात कही। तब धनाजी ने कहा "यह तो कायरता है जब छोड़ना है तो **विलंब क्यों ?**" सुभद्रा को इसमें अपने भाई का अपमान लगा। उसने कहा "कहना सुलभ है करना **दुर्लभ है।**" धनाजी स्वयं के हृदय में तो विराग भाव युक्त थे ही। उन्होंने कह दिया "सुभद्रा ! **जैसे कहना सुलभ** है वैसे करना भी सुलभ है। लो आज से तुम आठों का त्याग कर दिया।" ऐसा कहकर **शालिभद्र** को भी जाकर कहा "कायर न बनो, राह न देखो, चलो हम दोनों साथ चले !"

विशाल महोत्सव पूर्वक दोनों ने महावीर प्रभु के पास चारित्र लिया। आराधनाकर जन्म सफल किया।

"आहार अंतराय का फल"

ऋषभदेव ने पूर्व में एक भव में खेत में वृषभों को मारते हुए देखकर कहा था सलाह दी थी कि ये तुम्हारे अनाज में मुँह डालते है इन्हें मारो मत इनके मुँह पर "सीका" बांध दो। उन किसानों ने सीका बांध दिया। वह सिका बारह घडी तक पशुओं को आहार के अंतराय का कारण **बना। उस** अंतराय कर्म के कारण ऋपभदेवजी के भव में गोचरी पानी न मिली।

ढंढण कुमार पूर्व में पांचसो वृषभों को आहार पानी देने के समय पर न देकर **एक बार और** उनसे काम लेकर फिर चारा पानी दिलवाते थे। जिससे छह महिने तक द्वारिका नगरी **में गोचरी जाने** पर भी ढंढण ऋषिजी को गोचरी न मिली।

'जैसा करो वैसा भरो'

कलावती ने पूर्व में राजकुमारी के भव में एक पोपट की पांख काटी थी। उस पोपट की आत्मा ने ही शंख राजा के रूप में कलावती के हाथ कटवाये थे।

'जयानन्द'

MESCO PRINTS